मास्टर ऑफ कॉमर्स
एम.कॉम.
प्रथम वर्ष

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र

(प्रथम प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र

ई–संस्करण 2022–23 / MCom-I-175

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :

प्रो. भरत मिश्र

कुलपति

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण

डॉ. चन्द्र प्रकाश गूजर

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. चन्द्र प्रकाश गूजर

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. चन्द्र प्रकाश गूजर

डॉ. देवेन्द्र पाण्डेय डॉ. विजय सिंह परिहार

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सम्पर्क सूत्र :

डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र. शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र

(प्रथम प्रश्नपत्र)

उद्देश्य–प्रबंध व संगठनात्मक व्यवहार के अवधारणीय रूपरेखा समझने में छात्रों की सहायता करना।

पाठ्यक्रम विषय वस्तु

इकाई–1 : प्रबंध विचारों का घराना (School of Managemental Though)– वैज्ञानिक प्रक्रिया, मानव व्यवहार तथा सामाजिक प्रणाली घराना, निर्णय सिद्धान्त घराना, मात्रा एवं तंत्र घराना प्रबंध की आपात सिद्धान्त, प्रबंधक के कार्य।

इकाई–2 : प्रबंधकीय कार्य नियोजन (Managerial Functions) : अवधारणा, महत्व, प्रकार, संगठनीकरणदृअवधारणा, सिद्धान्त, थ्योरी एवं संगठन के प्रकार, अधिकार, दायित्व शक्ति प्रतिनिधिगण, विकेंद्रीकरण, अधिकारी / कर्मचारी समूहीकरण निर्देशन समवयीकरण नियंत्रण– प्रकृति, प्रक्रिया एवं तकनीक।

इकाई–3 : संगठनात्मक व्यवहार (Organisational Behaviour) : संगठनात्मक व्यवहार–अवधारणा व महत्व, प्रबंध व संगठनात्मक व्यवहार के मध्य संबंध, प्रकटीकरण एवं नीति परिदृश्य दृष्टिकोण, बोधगम्यता सीखना, व्यक्तित्व संव्यहारिक विश्लेषण।

इकाई–4 :अभिप्रेरणा (Motivation) : अभिप्रेरणा प्रक्रिया, अभिप्रेरणा के सिद्धांत–आवश्यकता सोपान सिद्धांत, X–सिद्धांत व Y–सिद्धांत, द्विघटक सिद्धांत, नेतृत्व–अभिधारणा, नेतृत्व ढंग, सिद्धांत–विशेष गुण सिद्धांत, व्यवहारीय सिद्धांत, फील्डर का आपात सिद्धांत।

इकाई–5 :संगठनात्मक विवाद (Inter-personal Organizational Communication) : गतिकीर एवं प्रबंध, स्त्रोत प्रतिरूप, स्तर विवाद के प्रकार, विवाद की परम्परागत व आधुनिक विधि, कार्यकारी व अकार्यकारी संगठनात्मक विवाद विवादों का समाधान।

अतिर्वैयक्तिक व संस्थागत संप्रेषण – द्वीमार्गी सम्प्रेषण की अवधारणा, सम्प्रेषण प्रक्रिय प्रभावशाली सम्प्रेषण में संव्यवहारात्मक विश्लेषण।

इकाई–1

प्रबंध का अर्थ(Meaning of Management)

प्रबंध का नवीन विषय है। विकसित राष्ट्रों में भी इसके सिद्धान्तों, कार्यों प्रकृति एवं क्षेत्र के सम्बन्ध में किसी सर्वमान्य शब्दावली का विकास नहीं हो पाया है। यही कारण है कि प्रबंध में किसी सर्वमान्य शब्दावली का विकास नहीं हो पाया है। यही कारण है कि प्रबन्ध को विद्वानों ने अपनी–अपनी सुविधा, विश्वास एवं दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है। प्रबन्ध के अर्थ के बारे में लेखक एकमत नहीं है।

ई0एफ0एल0 ब्रेच (EFL Brech) ने ठीक ही कहा है कि ''हमारे युग की सबसे आश्चर्यजनक बात शायद प्रबंन्ध का आधारभूत अथवा विस्तृत महत्व होना नहीं है, वरन् इसके सम्बन्ध में हमारे सुदृढ़ ज्ञान का विस्मित रूप से सीमित होना है।'' पीटर इकर (Peter Druker) लिखते हैं कि प्रबन्धक तथा प्रबन्ध पकड़ में न आने वाले शब्द हैं। The words manager and management are sloppery में एक अन्य स्थान पर लिखते हैं कि प्रबंन्ध असाधारण रूप से एक कठिन शब्द है। यह भी इसका रूपान्तरण कठिनाई से ही किया जा सकता है। यह एक कार्य (Function) को किन्तु साथ उन व्यक्तियों (People) को भी बतलाया हैं, जो उसे सम्पन्न करते हैं।

यह एक सामाजिक स्थिति एवं पद (Social PositionAnd rank) को, किन्तु साथ ही एक विधा (Discipline) और अध्ययन के क्षेत्र (Field of Study) को भी बतलाता है।श्वस्तुतः औपचारिक अध्ययन के लिए प्रबन्ध का विषय बहुत नया है। विभिन्न राष्ट्रों में उसका प्रयोग अपने–अपने दृष्टिकोणों, विश्वासों और धारणाओं के अनुसार किया जाता रहा है। प्रबंन्ध की जटिल एवं अमूर्त प्रकृति के कारण भी उसके कई अर्थ प्रचलित हो गये हैं। अठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उद्योंगों का प्रबन्ध इन्जीनियर्स किया करते थे जिनके लिए प्रबन्ध का आशय वस्तु व यन्त्रों की डिजाइनें तैयार करना व उत्पादन का अभिन्यास तैयार करना होता है।

इस काल में लेखाकारों के लिए प्रबंन्ध का अर्थ सांख्यकीय सूचनाओं, तथ्यों व चिट्ठे के आधार पर संस्था की प्रगति का विवरण तैयार करना था। रासायन शास्त्रियों (Chemist) के लिए प्रबंन्ध प्राथमिक रूप से सत्रों (Formule) व मिश्रणों (MiÛture) का विषय था। 1940 के पश्चात प्रबंन्ध में मानव तत्व (human factor) को महत्व दिया जाने लगा।

प्रबन्ध शब्द को संकीर्ण एवं व्यापक अर्थो में प्रयोग किया जाता रहा है।

1. संकीर्ण अर्थ में प्रबन्ध का आशय अन्य लोगो से कार्य लेने की कला से है। (Art to get other to perform) यह सामान्य धारणा है कि प्रबन्धक दूसरों से कार्य करवाते है तथा स्वयं कार्य से प्रथक रहते है।

2. विस्तृत अर्थ में प्रबन्ध से आशय निर्धारित उददेश्यो की प्राप्ति के लिए मानवीय व्यवहार एवं कियाओ का निर्देशन करने से है अर्थात् संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रबन्ध सामूहिक प्रयासो के नियोजन निर्देशन एवं नियन्त्रण की प्रक्रिया है।

प्रबन्ध की विविध अवधरणा अथवा दृष्टिकोण

अवधारणा से तात्पर्य किसी वस्तु कार्य या व्यक्ति के सम्बन्ध मे उस विचार धारणा या आकृति से है जो उस वस्तु कार्य या व्यक्ति की विशेषताओ के आधार पर किसी व्यक्ति के मस्तिष्क से बनती है। अवधारणा एक निराकार बिचार है विशिष्ट बातो से सामानीयकृत किया जाता है। प्रबंध को विभिन्न व्यक्तियों ने भिन्न–भिन्न रूपों, स्थितियों एवं दृष्टिकोणों से देखा है। प्रबंध के सम्बन्ध में लोगों के मन में भिन्न–भिन्न विचार एवं धारणायें रही है। प्रबंन्ध को जिस व्यक्ति ने जिस रूप में देखा तथा उनकी जिन विशेषतोओं को महत्वपूर्ण माना, उसी के अनुरूप उनके प्रबन्ध की धारणा गढ़ ली। प्रबन्ध की अवधारणाओं को मोटे रूप में दो भागों में बांटा जा सकता है–

1. प्रबन्ध की सामान्य अवधारणायें तथा प्रबन्ध की नवीन अवधारणायें

2. प्रबंन्ध की सामान्य अवधारणायें

1. प्रबंन्ध एक आर्थिक संसाधन के रूप में– अर्थशास्त्रियों ने भूमि, पूंजी एवं श्रम की भांति ष्प्रबंन्धष् को उत्पादन का एक महत्वपूर्ण संसाधन माना है। प्रत्येक देश में औद्योगिक विकास के साथ–साथ प्रबंन्धकीय संसाधनों की आवश्यकता बढ़ जाती है। योग्य प्रबन्धकों पर ही फर्म की उत्पादकता एवं लाभदेयता निर्भर करती है। जिन उद्योगों में नवप्रवर्तनों का तेजी से प्रयोग किया जा रहा है, उनमें पूंजी एवं श्रम के स्थान पर प्रबन्ध का महत्व बढ़ जाता है। गतिशील उद्योगों में ष्प्रबन्धकीय विकास" के द्वारा उत्पादन एवं लाभों में वृद्धि की जा रही है।

2. प्रबंध अधिकार सत्ता की एक प्रणाली के रूप में –संगठन एवंप्रशासन के विशेषज्ञों ने ष्प्रबन्धष् को अधिकार सत्ता की एक प्रणाली माना है। प्रबंधकों की यह सत्ता उनके पद स्तर अधिकारों, संविधान एवं ज्ञान पर आधारित होती है। प्रबन्ध की सत्ता प्रणाली पदानुक्रम पर आधारित है। एक संस्था के प्रत्येक स्तर पर प्रबन्धक होते हैं। वे सभी अपने–अपने स्तरों पर नीतियां, योजनाएं, कार्य–प्रणालियां एवं आपसी सम्बन्ध निर्धारित करते हैं। हरबिसन तथा मायर्स के अनुसार, ष्प्रबंन्ध नियमें बनाने तथा नियमों का पालन कराने वाली संस्था है जो अधीनस्थों एवं अधिकारियों के सम्बन्ध के धागों से बंधी होती है।ष् प्रबंन्ध सत्ता का सबसे प्राचीन स्वरूप अधिनायकवादी रहा है। इसके पश्चात् मानवतावादी विचारधारा के विकास के साथ–साथ प्रबन्ध में पैतृकवादी, संवैधानिक तथा वर्तमान में प्रजातांत्रिक एवं भागीदारी दर्शन का उदय हुआ। आधुनिक प्रबन्ध को सत्ता की इन चारों विचारधाराओं के संयुक्तीकरण के रूप में देखा जाता है।

3. प्रबन्ध एक वर्ग एवं स्थिति के रूप में समाजशास्त्री प्रबन्धश वर्ग एवंको विशिष्ट व्यक्तियों, एक पद–स्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। ष्प्रबन्ध व्यक्तियों का समूह है जो अपने प्रबन्धीय एवं शिक्षा के आधार पर व्यवसाय का संचालन करता है। विशेषज्ञों का यह समूह अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाने के लिए विभिन्न प्रबन्धकीय कार्य जैसे, नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा नियंत्रण करता है। इस प्रकार प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के कार्यों के लिए उत्तरदायी होते हैं। प्रबन्धकीय वर्ग में विशिष्ट ज्ञान, अनुभव, चातुर्य एवं योग्यतायें होती है।

समाज में आर्थिक व सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता बढ़ने के साथ–साथ प्रबन्ध का एक शैक्षिक एवं बौद्धिक वर्ग के रूप में उदय हुआ है। प्रबन्ध वर्ग में प्रवेश करना अब परिवार प्रबन्धकीय वर्ग के विकास को कुछ विद्वान प्रबन्धीय कान्ति के रूप में देखते हैं।

4. प्रबन्ध की प्रक्रिया के रूप में–प्रबन्ध निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संगठन के साधनों को समन्वित करने की प्रक्रिया है। 'यह समूह में व्यक्तियों के साथ मिल कर कार्य करने तथा उनसे कार्य करवाने की प्रक्रिया है।' जार्ज आर. टेरी के शब्दों में– 'प्रबन्ध नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण एवं नियंत्रण की विशिष्ट प्रक्रिया है।'

डाल्टन ई0 मैक्फारलैंड के शब्दों में– ''प्रबन्ध विशिष्ट रूप में मार्गदर्शन, निर्देशन, पर्यवेक्षण, नेतृत्व, निर्णयन, नियोजन तथा सृजन की प्रक्रिया है।'' इस प्रकार प्रबन्ध मानवीय प्रयासों, कार्यों, तकनीक व अन्य संसाधनों को संयोजित करने एवं समन्वित करने की प्रक्रिया है ताकि संगठन के उद्देश्य की पूर्ति की जा सके।

नियोजन संगठन, अभिप्रेरण एवं नियंत्रण के द्वारा समन्वित एवं रूपान्तरित करके निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

5. प्रबन्ध एक ज्ञान की एक शाखा या एक विधा के रूप में –किसी भी क्षेत्र के व्यवस्थित ज्ञान को एक विधा के रूप में जाना जाता है। कानून, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, भौतिकी तथा अन्य विज्ञानों की भांति प्रबन्ध भी वर्तमान में एक स्वतंत्र ज्ञान एवं व्यवहार की शाखा के रूप में किया जाने लगा है। यह एक विषय एवं संगठित ज्ञान समूह के रूप में विकसित हो चुका है जिसका औपचारिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है। आधुनिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों, तकनीक विधियों एवं विचारधाराओं का वैज्ञानिक आधार पर निर्धारण किया जा चुका है। किन्तु मानव व्यवहार से सम्बन्धित होने के कारण प्रबन्ध एक जड़ विज्ञान नहीं वरन् एक गत्यात्मक विधा है। ब्रेसी एवं सेनफोर्ड के अनुसार, ''प्रबध–विधा के अर्थ में एक कला एवं ज्ञान का मिश्रण है।''

6. प्रबन्ध एक जीवन निर्वाह की शैली –प्रबन्ध को जीवन निर्वाह की एक शैली एवं ढंग के रूप में भी देखा जाता है। इस अर्थ में श्प्रबन्धश वह कार्य या धन्धा है जिसमें दूसरों से कार्य करवाने की जिम्मेदारी उठायी जाती है। यह जीवनवृत्ति का ऐसा साधन है जिसे प्रबन्धकीय समस्याओं के समाधान हेतु परामर्श दिया जाता है। ष्प्रबन्धष् व्यावसायिक संगठन एवं प्रशासन सम्बन्धी परामर्श देने का एक पेशा है। इस प्रकार एक क्षेत्र व पेशा है। विकासशील देशों में प्रबंध एक कैरियर व एक पेशा बन चुका है। प्रत्येक देश में प्रबन्ध के शिक्षण प्रशिक्षण व अनुसंधान हेतु अनेक अनेक संस्थाएं कार्य कर रही है।

7. प्रबन्ध कौशल अथवा कला –कई विद्वानों ने प्रबन्ध को दूसरों से कार्य करवाने की एक कला तथा मानवीय व्यवहार एवं प्रयासों को निर्देशित करने की नेतृत्व योग्यता एवं कौशल माना है।

2. प्रबंध की नवीन अवधारणायें

गत कुछ दशकों में प्रबन्ध की कुछ नई अवधारणाओं का भी विकास हुआ है। आधुनिक विचारक प्रबन्ध को कई नये रूपों में देखने लगे है। प्रबन्ध की ये नवीन अवधारणायें निम्नलिखित हैं–

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध की अवधारणा– बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रबन्ध ने एक नया रूप ग्रहण किया जिसे वैज्ञानिक प्रबन्ध कहा जाता है। इसके प्रतिपादक एफ0डब्ल्यू० टेलर है। इस अवधारणा ने प्रबन्ध के स्वरूप को व्यवस्थित वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण एवं तथ्य – केन्द्रित बना दिया है। अब एक "सामान्य ज्ञान, तीर या तुक्का, अनुमान त्रुटि और प्रयास अथवा परम्परा आधारित नहीं रह गया है। आज प्रबन्ध एक व्यवस्थित एवं कमबद्ध विज्ञान है। इसके सिद्धान्त प्रयोगों एवं विश्लेषण पर आधारित है। वैज्ञानिक प्रबन्ध की आधारभूत मान्यता यह है कि प्रत्येक कार्य का एक विज्ञान है।''

यह अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि ष्प्रत्येक कार्य को करने का एक सर्वोत्तम ढंग होता है। अतः इस अवधारणा के समर्थकों ने प्रयोगों एवं शोध के आधार पर कार्य की सर्वोत्तम विधि खोजने तथा उस विधि से कार्य करने को ही प्रबन्ध मान लिया था। टेलर ने लिखा है कि ''प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप क्या कराना चाहते हैं? तत्पश्चात् यह सुनिश्चित करना कि कर्मचारी इस कार्य को सर्वोत्तम एवं सबसे पहले सस्ती विधि से किस प्रकार पूरा करते हैं?'' टेलर कहते हैं कि ''प्रबन्धकीय कार्य को कुछ नियमों में बदला जा सकता है। प्रबन्ध परम्परागत, अव्यवस्थित अंगूठे के नियम से भिन्न संगठित ज्ञान है।''

प्रबन्ध की इस अवधारणा का जन्म औद्योगिक क्रान्ति की तत्कालीन परिस्थितियों के कारण हुआ था। 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशको में उद्योग में कम लागत पर श्रेष्ट किस्म का माल बनाये जाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। प्रत्येक कार्य के लिए शविज्ञानश का विकास किया जाने लगा। फलतःलोग प्रत्येक कार्य के लिए सर्वोत्तम विधि की खोज को ही प्रबन्ध मानने लगे।

2. मानव प्रधान अवधारणा –इस शताब्दी के चौथे दशक से ही समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने प्रबन्ध में रूचि लेना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप, प्रबंध का मानव प्रधान स्वरूप विकसित हुआ। इस अवधारणा की प्रमुख मान्यता यह है कि ''प्रबन्ध का विषय मानव है तथा प्रबन्ध मूलतः मनुष्यों का विकास है।'' संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति तभी संभव है जबकि प्रबन्धक कर्मचारियों के व्यक्तित्व, कार्य–गुणों तथा कार्य कौशल का ठीक से विकास करें।

मानव–प्रधान अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि मानव का विकास करके ही संस्था के कार्यों को भली प्रकार पूरा करवाया जा सकता है। प्रबंध का तात्पर्य ही कर्मचारियों की आर्थिक, सामाजिक तथा मानसिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करते हुऐ फर्म संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। एप्पले लिखते हैं, ''प्रबंध सेविवर्गीय प्रशासन है।''

3. सहकारी सामाजिक प्रणाली अवधारणा – कई प्रबंधशास्त्रियों का विचार है कि सम्पूर्ण संगठन को एक सहकारी सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। सम्पूर्ण कारखाना या उद्योगों पारस्परिक सामूहिक सम्बन्धों की एक प्रणाली है। अतः प्रबन्ध की सफलता संगठन सदस्यों के औपचारिक कार्यदृसम्बन्धों के साथ–साथ अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों पर भी निर्भर करती

4. निर्णय अवधारणा –अनेक विचारकों ने प्रबन्ध को मूलतः निर्णय की प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार प्रबन्ध की वास्तविक पहचान षनिर्णय लेनाष है। प्रबन्धक सामग्री, उत्पादन, कर्मचारी, यंत्र, कार्य–प्रणाली, विपणन आदि के बारे में निर्णय लेकर ही सगठन का संचालन करते हैं। प्रबंध सही समय पर सही निर्णय लेने की कला है। निर्णय लेकर ही प्रबन्ध नियोजन, संगठन निर्देशननियंत्रण आदि कार्यों को करते हैं। इस अवधारणा की यह मान्यता है कि 'निर्णय प्रबन्धकीय किया का सार है।'

5. नेतृत्व अवधारणा –कुछ विद्वान प्रबन्ध को एक नेतृत्व उत्तरदायित्व मानते हैं। उनके अनुसार प्रबन्ध का कार्य नेतृत्व एवं मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।एक संगठन की सफलता उसके कुशल नेतृत्व एवं मार्गदर्शन पर ही निर्भर करती है अवधारणा के अनुसार प्रबन्ध एक नेतृत्व शक्ति है नेतृत्व ही संगठन को उचित दिशा प्रदान करके लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है।

6. प्रणाली अवधारणा– आधुनिक प्रबन्ध विचारक प्रबन्ध को एक ष्खुली प्रणालीष के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार प्रबन्ध आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण से मिलकर बनी एक प्रणाली है। उनके अनुसार प्रबन्ध आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण से मिलकर बनी एक प्रणाली है जिसकी कई उप प्रणालियाँ है जो परस्पर रूप से सम्बद्ध होती है प्रबन्ध श्प्रणालीश के रूप में अपनी उप प्रणालियाँ में एक संतुलन तथा सहक्रियात्मक सम्बन्ध है। यह वातावरण से जुड़ा है। इस अवधारणा के अनुसार प्रबन्ध विभिन्न संसाधनों का रूपान्तरण करके उन्हें उत्पादन में बदलने की प्रणाली है यह साधनो को मूल्यो एवं उपयोगिताओ में बदलने की प्रक्रिया है।

7. सांयोगिक प्रबन्ध अवधारणा –इस अवधारणा के अनुसार ष्प्रबन्ध सांयोगिक या परिस्थितिजन्य हैश अर्थात् प्रबन्ध की सफलता परिस्थितियों एवं घटनाओं के अनुरूप कार्य करने पर निर्भर करती है। यह अवधारणा मानकर चलती है कि 'समस्त परिस्थितियों में प्रबन्ध करने की कोई एक श्रेष्ठ विधि या पद्धति निर्धारित नही की जा सकती।' प्रबन्ध की कोई एक निश्चित कार्य शैली तय नही की जा सकती यह तो परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

8. सर्वग्राही या व्यापक अवधारणा– प्रबन्ध की अवधारणा विभिन्न विषयों के श्रेष्ठ सिद्धान्तों (ज्ञान) का उपयोग करने पर बल देती है। यह समाजशास्त्र, मनोविज्ञन, राजनीतिशास्त्र, लोक प्रशासन, मानव विज्ञान, व्यवहारवादी विज्ञानों के श्रेष्ठ योगदानों, तकनीकों, दृष्टिकोणों का प्रबन्ध के क्षेत्र में उपयोग करके प्रबंध के स्वरूप को सर्वग्राही बना देती है। यह अवधारणा प्रबन्ध की अन्तर्विषयक प्रकृति पर बल देती है।

ये सभी अवधारणायें प्रबन्ध को पृथक–पृथक दृष्टि से देखती हैं। प्रबन्ध की अवधारणा समय और परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। प्रत्येक अवधारणा किसी एक सच को दर्शाती है। अतः प्रबन्ध के समग्र अर्थ को जानने के लिए किसी एक अवधारणा को मान लेना उचित नहीं है। वास्तव में, प्रबन्ध का इतना व्यापक एवं सर्वग्राही हो गया है कि प्रबन्ध की सही पहचान के लिए इन सभी अवधारणाओं का संयोजन आवश्यक है। अथवा 'तथ्य प्रबन्धकों की दृष्टि, समर्पण व सत्य निष्ठा ही यह निर्धारित करती है कि वहां प्रबन्ध है या कु प्रबन्ध।' प्रबन्ध की मानवीय प्रकृति के कारण ही लारेन्स एप्पले ने कहा है कि ''प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है, निर्जीव वस्तुओं का निर्देशन नहीं।''

3. सामाजिक प्रक्रिया Social Process—प्रबन्ध को सामाजिक प्रक्रिया भी माना गया है, क्योंकि इसमें व्यक्तियों के अन्तर सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता है। एक उद्योग अथवा व्यवसाय स्वयं में एक समुदाय है। जो विभिन्न वर्गों— अंशधारियों विभिन्न वर्गों— अंशधारियों कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं ग्राहकों, सरकार, व्यावसायिक संस्थाओं आदि के सहयोग से संचालित होता है। प्रबंधक को इन सभी वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों, हितों व कल्याण के लिए उत्तरदायी रहना होता है। प्रबंध लक्ष्यों की पूर्ति में व्यक्तियों का सहयोग एवं योगदान प्राप्त करने का उत्तरदायित्व है। सामाजिक प्रक्रिया के कारण ही प्रबन्धक में सामाजिक कौशल का गुण होना आवश्यक है। ई०एफ०एच० ब्रैच लिखते हैं कि ''संगठन में मानवीय तथ्यों की सर्वव्यापकता ही प्रबन्ध को सामाजिक प्रक्रिया का स्वरूप प्रदान करती है।''

4. मानवीय संगठनों से सम्बन्धित Related with Human Organisations— प्रबन्ध मानवीय संगठनों का ही किया जाता है। पशुओं, भौतिक संसाधनों, यंत्रों, भूमि—भवनों तथा अन्य निर्जीव वस्तुओं का प्रबन्ध नहीं होता, क्योंकि इन्हें निर्देश देना तथा उनका पालन करवाना सम्भव नहीं होता।

कारलिसले Carlisle के अनुसार, 'प्रबन्ध मानवीय संगठनों से सम्बन्धित कार्य है। पशुओं का प्रशिक्षक प्रबन्धक नहीं होता है जबकि मनुष्यों का प्रशिक्षक प्रबन्धक हो सकता है।'' सर्कस में पशुओं से कार्य लेने वाला प्रशिक्षक कहलाता है, प्रबन्धक नहीं।

5. एकीकृत प्रक्रिया Composite or Integrated Process—प्रबन्ध अपने विशिष्ट कार्यों जैसे— नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियन्त्रण, समन्वय आदि की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें इन सभी कार्यों को एक संयोजित एवं एकीकृत प्रक्रिया के रूप में किया जाता है। ये सभी कार्य पृथक्—पृथक् या एकाकी रूप से निष्पादित नहीं किये जाते हैं। ये सभी कार्य एक दूसरे से सम्बन्धित एवं प्रभावित होते हैं। ब्रेच ठतमबी लिखते हैं कि 'प्रबन्ध एक एकीकृत या संयोजित प्रक्रिया है।'

6. सामूहिक प्रयास Group Efforts— प्रबन्ध सामूहिक प्रयासों की व्यवस्था है। इसकी आवश्यकता व्यक्ति विशेष के प्रयासों के लिए नहीं होती है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति एक व्यक्ति की तुलना में सामूहिक रूप से कर पाना ज्यादा सुगम होता है। समूह के प्रयासों को समन्वित करने व प्रभावी बनाने के लिए प्रबन्धकीय निर्देशन एवं नियंत्रण की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध की समूह प्रकृति के कारण ही कून्ट्ज एवं ओ0डोनेल ने अपनी परिभाषा में औपचारिक रूप से संगठित समूहों, चाल्स रेनाल्ड ने ''समुदाय का अभिकरणAgency of Communityतथा लॉरेन्स एप्पले ने 'दूसरे व्यक्तियों के प्रयासEfforts of OtherPeopleशब्दों का प्रयोग किया है।''

7. पदानुक्रम व्यवस्था SystemHierarchy— प्रबन्ध अधिकारों की एक श्रेणीबद्ध भ्पमतंतबील व्यवस्था है। इसी कारण व्यक्तियों को स्थितियों Positions, भूमिकाओं Role सत्ता व दायित्वों में भेद हो जाता है। संस्था में कर्मचारियों के निर्देशन, अभिप्रेरण व नियंत्रण की आवश्यकता होती है। बड़े अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश निर्देश देते हैं, नियमानुसार कार्य करवाते हैं तथा कार्य की प्रगति के बारे में पूंछते हैं। वे अपने अधीनस्थों का नेतृत्व करते हैं। हरबिसन तथा मेयर्स ने लिखा है कि ''प्रबंध वास्तविक अर्थों में नियम

बनाने व लागू करने वाली संस्था है। यह स्वयं में उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के सम्बन्ध जाल में बंधी हुई होती हैं।''

8. समन्वयकारी शक्ति– प्रबंध एक समन्वयकारी शक्ति है। यह व्यक्तियों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने, विभिन्न वर्गों के हितों को समन्वित करने तथा संस्था के उद्देश्यों व उपलब्ध संसाधनों के मध्य एकीकरण करने की प्रक्रिया है। प्रबन्धक अपने समस्त कार्यों– नियोजन, संगठन, निर्देशन, अभिप्रेरण, नियंत्रण आदि में समन्वय के तत्व पर अधिक बल देता है। प्रबन्ध का आधारभूत स्वरूप समन्वयकारी ही है।

9. उद्देश्यपूर्ण प्रबन्ध –संस्थान के लक्ष्यों की प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसे नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण, समन्वय तथा नियन्त्रण के महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं, प्रबन्धकीय सफलता का मूल्यांकन पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के आधार पर ही किया जा सकता है। कोई अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश–निर्देश देने व उन पर अधिकार रखने मात्र से प्रबन्धक नहीं बन जाता है, प्रबन्धक की वास्तविक पहचान लक्ष्यों को प्राप्त करना है। मैसी डेंपम के शब्दों में ष्प्रबन्धक वास्तव में क्रियाशील व्यक्ति है Managers are really People ofAction.इसी प्रकार ड्रकर के ये शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं कि ''प्रबन्ध का स्वयं अपने लिए ज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसका सम्बन्ध निष्पादन से है।'' इस प्रकार प्रबन्ध एक लक्ष्य प्रधान Goal Oriented प्रक्रिया है।

10. पृथक् अस्तित्वSeparate Entity– आधुनिक व्यवसाय में प्रबन्ध का एक पृथक् स्थान बन गया है। यह व्यवसाय के स्वामियों एवं कर्मचारियों से भिन्न व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग है जिसके हाथों में प्रबन्ध–व्यवस्था की समस्त बागडोर होती है। प्रबन्ध निर्णय लेने, नेतृत्व प्रदान करने व कार्यों पर नियन्त्रण करने वाले व्यक्तियों का एक विशिष्ट वर्ग है। एक प्रथक वर्ग है मैसी ने प्रबन्ध को विशिष्टता प्राप्त वर्गDistinguishableGroup कहा है। यह वर्ग ज्ञान, पद, स्थिति व अधिकारों में उच्च होता है। वर्तमान में प्रबन्धकों के इस विशिष्ट वर्ग को पेशेवर प्रबन्धकों के रूप में जाना जाता है।

मतों की विभिन्नता क्पअमतेपजल इस बात की ओर संकेत करती है कि प्रबन्ध का अध्ययन अर्थ विज्ञान के जंगलJungle of Semantics में एक लम्बी यात्रा है। प्रबन्ध के स्वरूप व क्षेत्र में अनेक परिवर्तनों के कारण इसका अर्थ गतिशील रहा है। ब्रैच Breach ने इसी कारण लिखा है कि ''वास्तव में प्रबन्ध शब्द का अर्थ सदैव स्पष्ट नहीं हो पाता है और सदैव उस अर्थ को स्वीकार भी नहीं किया जा सकता है।'' फिर भी अधिकांश विद्वानों ने प्रबन्ध का अर्थ एक प्रक्रिया एवं कार्य के रूप में ही लगाया है।

परिभाषा

एक उद्यम की गतिविधियों का विशेष नीतियों के साथ संगठन और समन्वयन, और स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्यों की प्राप्ति अक्सर प्रबंधन को मशीनों, पदार्थों और धन के साथ उत्पादन के एक कारक के रूप में शामिल किया जाता है। प्रबंधन गुरू पीटर ड्रकर प्रबंधन का मूल कार्य दोहरा हैरू विपणन और नवाचार आधुनिक प्रबंधन के अभ्यास की उत्पत्ति 16 वीं शताब्दी में मानी जाती है, जब विशेष उद्यम असफल हुए और उनकी दक्षता कम थी, इसका संचालन अंग्रेजी राजनेता सर थॉमस भोर 1478–1535 ने किया।

निदेशक और प्रबंधक जिनके पास एक उद्यम को प्रबंधित करने के लिए फैसला लेने की क्षमता और उत्तरदायित्व है एक अनुशासन के रूप में प्रबंधन में शामिल है, नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक फर्म के संसाधनों का आयोजन नियोजन, नियंत्रण और निदेशन कारपोरेट नीति निर्माण के इंटरलोकिंग कार्य प्रबंधन का आकार एक छोटी सी फर्म में एक व्यक्ति से लेकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में सैकड़ों या हजारों प्रबंधकों तक हो सकता है बड़ी कम्पनियों में निदेशक मंण्डल नीति का निर्माण करता है, जिसे मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा कार्यान्वित किया जाता है कुछ कारोबार विश्लेषक और वित्त पोषक एक संगठन की वर्तमान और भविष्य की कीमत को आंकने के लिए प्रबंधकों के अनुभव और गुणवत्ता को उच्चतम महत्व देते हैं।

प्रबंध की विशेषताएं एवं लक्षण

प्रबंध मानवीय संगठनों का एक विशिष्ट कार्य है। इसके अर्थ अवधारणा एवं प्रकृति को सही रूप में समझने के लिए इसकी प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रबंध की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. एक प्रक्रिया अथवा कार्य (A Process of Function)– प्रबंन्ध संस्था के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों को संयोजित करके निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रकिया है। इसमें नियोजन, संगठन, समन्वय, निर्देशन अभिप्रेरण व नियन्त्रण आदि कार्य सम्मिलित है। प्रबन्ध प्रकिया के माध्यम से ही संगठन के संसाधनों को उत्पादन एवं लाभ में रूपान्तरित किया जाता है। यह व्यक्तियों का निर्देशन करने एवं परिणाम प्राप्त करने की प्रकिया है। पीटर ड्रकर लिखते हैं कि ''प्रबन्ध एक कार्य है, उसका अपना कौशल, अपने उपकरण एवं अपनी तकनीकें हैं।''

2. मानवीय प्रक्रिया Human Processप्रबंध मानवीय व्यवहार एवं प्रयासों के नियोजन, संगठन, निर्देशन, अभिप्रेरण एवं नियन्त्रण से सम्बन्धित हैं। मानव एवं उसका व्यवहार ही प्रबन्ध की मुख्य विषय वस्तु है। पीटर एफ०ड्रकर का कथन है कि प्रबन्धक कार्य है प्रबन्ध एक विधा है। किन्तु प्रबन्ध व्यक्ति भी है। प्रबन्ध की हर उपलब्धि प्रबन्धक की उपलब्धि है। हर सफलता प्रबन्धक की सफलता है। व्यक्ति प्रबन्धक करते हैं न कि शक्तियां।

प्रबन्ध चिन्तन की विचारधारायें या स्कूल

प्रबंध की विचारधारा उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव सभ्यता प्रबन्ध का जो स्वरूप आज विद्यमान है उसके पीछे अनेक मतों, वादों, विचारधाराओं दृष्टिकोणो एवं स्कूलों की पृष्ठभूमि रही है। पिछली एक सदी में प्रबंध को अनेक मत–मतान्तरों से समझने का प्रयास किया गया है। अनेक विचारधाराओं की भूल–भुलैया में फंस जाने के कारण ही प्रो० कण्ट्ज को यह कहना पड़ा कि ''प्रबंध में विचारधाराओं, दृष्टिकोणों एवं स्कूलों की पृष्ठभूमि रही है। पिछली एक सदी में प्रबन्ध को अनेक मत–मतान्तरों में समझने का प्रयास किया गया है।'' अनेक विचारधाराओं की भूल–भुलैया में फंस जाने के कारण ही प्रो० कूण्ट्ज को यह कहना पड़ा कि ''प्रबंध में विचारधाराओं का एक जंगल खड़ा हो गया है।'' वे एक अन्य स्थल पर लिखते हैं कि ''प्रबन्ध ज्ञान की विभिन्न विचारधाराओं ने एक भ्रमित एवं विनाशकारी युद्ध स्थिति उत्पन्न कर दी है।''

यहां विचारधारा से तात्पर्य ज्ञान, विचारों तथा कार्य–पद्धतियों के समूह (A Body of Knowledge Concepts and Procedures) से है, जिनका उपयोग प्रबन्धकीय कार्यों के निष्पादन में किया जाता है।

पिछले कुछ दशकों में प्रबन्ध विचारधाराओं की बाढ़ सी आ जाने के कई कारण रहे हैं। इनमें कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

1. भिन्न परिवेश– प्रत्येक विचारधारक की कार्य की पृष्ठभूमि भी भिन्न–भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, कोई औद्योगिक संगठन से जुड़ा है तो कोई समाजशास्त्री है, तो कोई मनोवैज्ञानिक इसी कारण उनके दृष्टिकोण एवं विचारधाराएं भी भिन्न–भिन्न होतीजाती है।

2. भिन्न पृष्ठभूमि – प्रत्येक विचारक की कार्य की पृष्ठभूमि भी भिन्न–भिन्न होती है। उदाहरण के लिए कोई विचारक औद्योगिक संगठन से जुड़ा है तो कोई समाजशास्त्री है तो कोई मनोवैज्ञानिक। इसी कारण दृष्टिकोण एवं विचारधाराएं भी भिन्न–भिन्न हो जाती हैं।

प्रबंध विचारधारायें अथवा स्कूल

प्रबंध के क्षेत्र में पिछले कुछ दशकों में विकसित हुई प्रमुख विचारधारायें निम्नलिखित हैं–

1. परम्परा द्वारा प्रबन्ध विचारधारा
2. अनुभव आश्रित विचारधारा
3. वैज्ञानिक प्रबंध विचारधारा
4. प्रक्रिया विचारधारा
5. मानव व्यवहार विचारधारा
6. सामाजिक प्रणाली विचारधारा
7. सामाजिक–तकनीकी प्रणाली विचारधारा
8. निर्णयन सिद्धान्त विचारधारा
9. गणितीय विचारधारा
10. प्रणालीगत या तंत्रमय विचारधारा
11. परिस्थितिगत या आकस्मिकता विचारधारा
12. प्रबन्धकीय भूमिका विचारधारा कुछ अन्य विचारधारायें

विभिन्न प्रबन्ध दृष्टिकोण अथवा स्कूल का विवेचन निम्न प्रकार हैं–

1. परम्परा द्वारा प्रबन्ध विचारधारा

यह अत्यन्त प्राचीन विचारधारा है जिसमें एक प्रबन्ध अपनी तथा दूसरी फर्मों की विद्यमान परम्पराओं, प्रथाओं एवं मान्य धारणाओं के आधार पर प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन करता है। इसमें प्रबन्धक विभिन्न निर्णय लेते समय तथा समस्याओं को हल करते समय विगत अभिलेखों को देखकर कार्य करता है। कई संगठनों में पर्याप्त विचार–विमर्श व अनुभवों के आधार पर निश्चित कार्यविधियों का निर्धारण कर दिया जाता है, जो वर्षों तक प्रबन्धकों के लिए मार्गदर्शन करती है।

यह विचारधारा रीति–रिवाजों को मान्यता प्रदान करती है। इसमें कठिन प्रबन्धकीय विशेषताओं के समाधान के लिए पुरानी लीक का अनुगमन किया जाता है।

विशेषताएं

इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

1. यह विचारधारा परम्परावाद पर आधारित है।

2. यह प्रबन्धकीय कार्यों में प्रचलित व विगत प्रथाओं, व्यवहारों, रूढ़ियों, दस्तूरों का पालन है।

3. यह प्रबन्धकीय व्यवहारों में स्थायित्व उत्पन्न करती है।

मूल्यांकन

यह विचारधारा सरल है तथा प्रबन्धकों में सुरक्षा भावना उत्पन्न करती है। इस विचारधारा को अपनाने के लिए लिए प्रबन्धक पूरे उपक्रमों की परम्पराओं व प्रथाओं का भी ज्ञान करता है। किन्तु दूसरी ओर इस विचारधारा को अपनाने वाला प्रबन्धक नये परिवर्तन, नयी दृष्टि तथा नयी सोंच का स्वागत करता है। यह एक जड़ विचारधारा है तथा संगठन में विचारशीलता को प्रोत्साहित नहीं करती है।

2. अनुभव–आश्रित विचारधारा

प्रबन्ध अध्ययन की यह विचारधारा विशिष्ट मामलों के माध्यम से अनुभवों के विश्लेषण पर बल देती है यह अनुभवों पर आश्रित दृष्टिकोण है। इसमें वैयक्तिक प्रबन्धकों की सफलता एवं असफलता का विश्लेषण करके मार्गदर्शन प्राप्त किया जाता है।

यह विचारधारा 'पहले कैसे किया था' के आधार पर प्रबन्धकों के अनुभवों का अध्ययन है। इस विचारधारा के समर्थकों का यह विश्वास है कि प्रबन्धकों के अनुभवों का विश्लेषण करके भावी प्रबन्धकीय कार्यों के लिए कुछ उपयोगी सामान्यीकारण किये जा सकते हैं। इन समान्य निष्कर्षों से प्रबन्धकीय कार्यों के निष्पादन में सुविधा हो जाती है तथा प्रबन्ध के शिक्षण प्रशिक्षण में भी सरलता हो जाती है।

इस विचारधारा के समर्थकों में कीथ डेविस, अर्नेस्ट डेल, न्यूमैन आदि प्रमुख हैं। अर्नेस्ट डेल के अनसार "अनुभवाश्रित विचारधारा शकियात्मक दृष्टिकोणश का अनुशरण करती है जिसके अन्तर्गत तथ्यों के निर्धारण के लिए विगत क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है,

तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए सिद्धान्तों का प्रयोग भावी क्रियाओं के सम्बन्ध में अनुमान लगाने के लिए किया जाता है।''

विशेषताएं

इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताए निम्न हैं–

1. यह विचारधारा प्रबन्ध का अध्ययन करने के लिए पिछले अनुभवों को आधार बनाती है। इसके अनुसार, 'प्रबन्ध अनुभवों का अध्ययन है'।

2. इसके अनुसार ''इतिहास अपने आपको दोहराता है।'' अतः यह दृष्टिकोण भूतकालीन घटनाओं व मामलों के अध्ययन को महत्व देता है।

3. इसकी मान्यता है कि प्रबन्धकीय अनुभव का हस्तान्तरण संभव है।

4. इसके अनुसार ''भूतकालीन समस्यायें एवं इनके समाधान भविष्य में भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।''

5. यह विचारधारा भूतकालीन अनुभवों को ज्यों का त्यों अपनाने का समर्थन नहीं करती, वरन उन्हें वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप अपनाने पर बल देती है।

6. यह प्रबन्धकों कीउपलब्धियों, कम्पनियों गलतियों व भूलों के आधार पर सीखने पर बल देती है। यह मानती है कि भूल व सुधार के द्वारा भावी प्रबन्धक तैयार किये जा सकते हैं।

7. इस विचारधारा के समर्थकों का मानना है कि प्रबन्ध के भावी विकास के लिए भूतकालीन अनुभवों एवं कियाओं का विश्लेषण आवश्यक है।

8. यह वास्तवविक जगत से सम्बन्ध रखती है।

मूल्यांकनEvaluation

इस विचारधारा की निम्न कमियां एवं सीमाएं हैं–

1. यह अध्ययन पद्धति ष्अनुभवष् को भावी समस्याओं के हल का आधार मानती है लेकिन प्रबन्ध की भावी समस्याएं सदैव समान नहीं होती है।

2. प्रत्येक निर्णय एवं अनुभव की भिन्न–भिन्न दशाएं एवं कारण होते हैं। अतः विगत अनुभवों से प्राप्त निष्कर्षों को भावी कार्यों के लिए प्रयुक्त करना उचित नही होता है।

3. प्रबन्ध गतिशील है जबकि पुराने अनुभव जड़ होते हैं।

4. आलोचकों के अनुसार इस विचारधारा में निर्णयों के विभिन्न विकल्पों का अध्ययन नहीं किया जाता है। इसमें उन अन्य विकल्पों का अध्ययन नहीं किया जाता है। जो भूतकालीन प्रबन्धकों ने छोड़ दिये थे। इस प्रकार इसमें सम्पूर्ण अध्ययन नहीं किया जाता है।

5. प्रबन्ध अब एक विस्तृत विषय बन गया है जिसमें सभी पहलुओं का अध्ययन करना कठिन है।

6. प्रबन्ध एक गतिशील विषय बनता जा रहा है। इसका वातावरण अत्यन्त परिवर्तनशील है। अतः भूतकालीन अनुभवों पर निकाले गये निष्कर्ष अधिक जटिल होते हैं।

संक्षेप में, यह विचारधारा अनुभवों को आधार बनाकर प्रबन्ध करने पर बल देती है किन्तु यह बहुत कम संभव होता है कि भूतकालीन घटनाओं के अनुरूप ही भविष्य में भी घटनायें घटित हों। अतः इसकी उपयोगिता सीमित ही रहती है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा Scientific ManagementApproach

वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा का विकास औद्योगिक क्रान्ति के दौरान हुआ था। बहुत पुरानी होते हुए भी, यह विचारधारा क्लॉड जॉर्ज Claude Georgeके अनुसार ''अपने समय से 20 से 30 वर्ष आगे थी।" इसे उत्पादकता या दक्षता विचारधारा के प्रतिपादक रहे हैं।

यह विचारधारा संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाने पर ध्यान देती है। अतः यह कार्य समय, गतियों, कार्यविधियों, सामग्री, यंत्रों किस्म, आदि के प्रमाणीकरण पर जोर देती है। यह श्रमिकों का वैज्ञानिक ढंग से चयन करने, उन्हें प्रशिक्षित करने कार्य का वैज्ञानिक करने तथा उनसे सर्वश्रेष्ठ विधि से कार्य करवाने पर बल देती है। यह विचारधारा श्रमिको से अधिकतम कार्य कराने के लिए प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों को भी लागू करती है।

विशेषताएं एवं मान्यताएं Characteristics andAssumption

वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा की प्रमुख मान्यताएं एवं विशेषताएं निम्न प्रकार है–

1. यह विचारधारा प्रत्येक कार्य करने के लिए एक सर्वश्रेष्ठ विधि खोजने पर बल देती है।

2. यह कार्य में रूढ़ियों, अनुमान 'भूल एवं सुधार' विधियों के स्थान पर प्रयोग, परीक्षण व विश्लेषण पर बल देती है।

3. यह प्रत्येक कार्य के लिए समय सामग्री व कार्य विधि का प्रमाणीकरण करती है।

4. यह प्रत्येक श्रमिक के प्रत्येक दिन के उचित कार्य तथा मजदूरी थ्पत क्लश्े ूवता।दक ूहमे का निर्धारण करती है।

5. यह समस्त कार्यों एवं संगठन संरचना में विशिष्टीकरण को महत्व देती है।

6. यह विचारधारा कर्मचारियों के चुनाव प्रशिक्षण कार्य वितरण, कार्य दशाओं के निर्धारण आदि में वैज्ञानिक विधि एवं तर्कयुक्त दृष्टिकोण को अपनाती है।

7. यह विचारधारा श्रमिकों एवं मालिकों के बीच मैत्री, सहकारिता, सदभाव को उत्पादकता वृद्धि की पूर्व शर्त मानती है।

8. यह सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य स्वीकार करती है। यह उत्पादन अवरोध को सामाजिक अपराध मानती है।

9. यह उत्पादन वृद्धि के लिए प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों, श्रम– प्रबन्ध हित सामंजस्य तथा विज्ञान के विकास पर जोर देती है।

मूल्यांकन

वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा को सार्वभौमिक मानकर इसका प्रयोग अनेक संगठनों में किया जा रहा है। इसके पक्ष में प्रमुख तर्क निम्न प्रकार हैं–

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त किया जासकता है।

2. यह व्यर्थ की बर्बादी को रोकने के समर्थ है।

3. यह तर्क, विश्लेषण व वैज्ञानिक अध्ययन पर जोर देती है।

4. मानसिक, क्रान्ति से अनावश्यक हित टकराव व संघर्ष समाप्त हो जाते हैं।

5. इससे श्रमिकों की आय सम्पन्नता व संतुष्टि में वृद्धि होती है।

6. इसमें प्रमाणित वस्तुओं का उत्पादन होता है।

7. इसको अपनाने से विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

कुछ लोगों द्वारा वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा की अलोचनाएं भी की गयी हैं। ये निम्न प्रकार हैं–

1. यह उत्पादकता–प्रधान विचारधारा है जो केवल अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को ही ध्यान में रखती है। यह कर्मचारियों के जीवन को यांत्रिकता में बदल देती है।

2. यह मानवीय पहलू की उपेक्षा करती है। इसमें श्रमिकों की भावनाओं व आकांक्षाओं का कोई स्थान नहीं होता है।

3. यह कर्मचारी को केवल आर्थिक–विवेकशील मनुष्य के रूप में ही देखती है। यह केवल आर्थिक प्रेरणाएं ही प्रदान करती हैं।

4.यह केवल उपयोगितावादी दृष्टिकोण ही प्रस्तुत करती है, व्यवहारवादी नहीं।

5. यह विचारधारा कार्यशाला प्रबन्ध पर ही सम्पूर्ण ध्यान देती है। यह प्रबन्ध की सम्पूर्ण विचारधारा नहीं है।

6. कुछ आलोचकों के अनुसार यह निरंकुश प्रबन्ध को बढ़ावा देती है।

7. यह कठोर श्रम, कट्टरता व हठधर्मिता का सहारा लेती है। यह प्रत्येक स्थिति मेंविशिष्टिकरण, प्रमाणीकरण पर ध्यान देती है, जबकि व्यवहार में ऐसा करना सम्भव नहीं होता है।

8. इस विचारधारा को लागू करना बहुत कठिन व खर्चीला है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद भी वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा का उपयोग कारखानों एवं गैर–व्यावसायिक संगठनों में तेजी से किया जा रहा है। इस विचारधारा के फलस्वरूप ही आज प्रबन्ध विज्ञान की बात होने लगी है।

4. प्रक्रिया विचारधारा

प्रक्रिया विचारधारा प्रबन्ध को एक प्रक्रिया मानती है जो विभिन्न उप–क्रियाओं अथवा कार्यों में बंटी होती है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध कुछ प्रक्रियाओं का समूह में अथवा कुछ कार्यों की श्रृंखला है।

यह विचारधार मानती है कि प्रबन्ध सार्वभौमिक प्रकिया है। जिसके सिद्धान्तों को सर्वत्र लागू किया जा सकता है। इस लिए कुछ विद्वान इसे प्रबन्ध की सार्वभौमिक विचारधारा भी कहते हैं।

यह विचारधारा प्रबन्ध के आधारभूत कार्यों का निर्धारण करती है। इसलिए इसे कार्यात्मक विचारधाराFunctionalApproach भी कहा जाता है। प्राचीन तथा अधिक प्रचलित होने के कारण इसे परम्परागत विचारधारा के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रबन्ध प्रक्रिया विचारधारा के जनक हेनरी फेयोल माने जाते हैं। किन्तु इसके विकास एवं संशोधन में न्यूमैन, हैरोल्ड, जार्ज हेरी, लूथर, गुलिक, उर्विक, बैच आदि विद्वानों ने भी योगदान दिया है अथवा प्रबन्धकीय कार्य क्रियायें Managerial WorkActivities.

1. यह विचारधारा प्रबन्ध कार्य को एक प्रक्रिया मानती है, नियोजन, संठन, निर्देशन, नियंत्रण, आदि, आदि इसके तत्व है।

2. यह विचारधारा मानती है कि प्रबन्ध का कार्य अन्य लोगों से कार्य करवाना है।

3. प्रबन्ध प्रक्रिया का जन्म अन्य लोगों से कार्य करवाने के लिए होता है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध प्रक्रिया के कुछ आधारभूत तत्व या कार्य है। इन कार्यों में नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण आदि शामिल है।

4. इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध प्रक्रिया प्रबन्धकों के कार्यो का कारण तथा परिणाम है।

5. प्रबंध प्रक्रिया के तत्व–नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियंत्रण आदि अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

6.यह प्रक्रिया सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार संचालित की जाती है। इन सिद्धोन्तों के निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर रूप से चलती रहती है।

7. इस विचारधारा के समर्थक मानते हैं कि प्रबन्ध के सिद्धान्त प्रबन्ध कार्यों को करने तथा उनमें सुधार करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

8. इन प्रबन्धन सिद्धान्तों का निर्माण अनुभव, अन्तर्ज्ञान एवं व्यवहार के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है।

9. यह विचारधारा प्रबन्ध सर्वत्र प्रयुक्त एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

10. इसके अनुसार प्रबन्ध सर्वत्र प्रयुक्त एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

11. इसके कार्यों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग सभी स्तरों पर कार्यरत प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है।

12.यह विचारधारा अनुभव एवं व्यवहार दोनों को ही प्रबन्ध की सफलता का आधार मानती है।

13. यह विचारधारा प्रबन्ध पद्धतियों एवं स्थितियों को वैसे ही बनाये रखने पर जोर देती है जैसी कि विरासत में मिली होती है। यह विचारधारा यथास्थिति बनाये रखती है।

14. यह विचारधारा ज्ञान के अन्य क्षेत्रों को अपने मे समाविष्ट नहीं करती है।

15. इस विचारधारा का मुख्य उद्देश्य प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना, वैचारिक ढाँचे की स्थापना करना तथा मूलभूत सिद्धान्तों का निर्धारण करना है।

16. इसके अनुसार प्रबन्ध की प्रक्रिया निरन्तर रूप से चलती रहती है।

17. यह विचारधारा परम्पराओं में परिवर्तन करने, प्रबन्ध कार्यों पर शोध करने, सिद्धान्तों का परीक्षण करने तथा प्रबन्ध सिद्धान्तों के शिक्षण–प्रशिक्षण की व्यवस्था करने पर बल देती है।

इस विचारधारा को प्रशासनिक विचारधारा भी कहते हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध टेलर दृष्टिकोण तथा प्रशासनिक दृष्टिकोण फेयोल को संयुक्त रूप से प्रबन्ध विचारधारा है।

यह विचारधारा निर्जीव यंत्रों, कार्यों व संसाधनों के स्थान पर कर्मचारियों अर्थात् "मानव" को अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानती है इसमे व्यवहार का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान, मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र जैसे व्यावहारिक विज्ञानों के ज्ञान का उपयोग किया जाता है। इस विचारधारा का विकास मनोवैज्ञानिक एवं मानवशास्त्रियों द्वारा किया गया है। इसके प्रतिपादन का प्रमुख श्रेय इल्टन मायो को दिया जाता है।

विशेषताएँ

इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. इस विचारधारा की मान्यता है कि कर्मचारी एक सामाजिक प्राणी है वह मशीन का एक पुर्जा अथवा उत्पादन का साधन मात्र नही है।

2. यह विचारधारा मानती है कि प्रत्येक कर्मचारी की अपनी सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकतायें होती है जिनकी संतृप्ति करना जरूरी होता है।

3. यह मनोविज्ञान पर आधारित है।

4. किसी भी प्रबन्धक द्वारा कर्मचारियो को पशुओ की भाँति हाँककर अथवा उन्हें मनमाने आदेश देकर अथवा मशीनों की भाँति वटन दबाकर उनसे कार्य नही लिया जा सकता।

5. यह कर्मचारियो को सजीव भावनाओ वाले मानव के रूप में देखती है।

6. यह विचारधारा मानवीय सम्बन्धों एवं अभिप्रेरण को महत्व देती है।

7. यह विचारधारा अन्तर– व्यक्ति सम्बन्धों पर पर्याप्त बल देती है।

8. यह विचारधारा कर्मचारी को मशीनरी पुर्जा नहीं, वरन भावपूर्ण मानव मानती है।

9. यह कुशल नेतृत्व द्वारा कार्य का मानवीय वातावरण तैयार करने में विश्वास रखती है।

इस विचारधारा के विकास में अनेक समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों का योगदान रहा है। जिनमें इल्टन मायो, राथलिसबर्जर जैसे व्यवहारवादियों के नाम प्रमुख हैं।

मूल्यांकन

यह विचार धारा कर्मचारी को मानवीय गरिमा प्रदान करती है। उसकी आवश्यकताओं, भावनाओं, अन्तर्व्यहारों आदि को समझने पर बल देती है। इस विचार धारा के अनुसार प्रबन्धक कार्य का अभिप्रेरणात्मक वातावरण तैयार करके संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करते हैं।

इस विचारधारा का मूल्यांकन करते हुए पीटर एफ० ड्रकर लिखते हैं कि यद्यपि मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा ने प्रबन्ध को गलत विचारो के प्रभुत्व से मुक्त किया हैं। लेकिन इसने पुरानी विचारधारा के स्थान पर कोई नवीन विचारधाराके प्रतिपादन में सफलता प्राप्त नही हैं।

इसकी कुछ प्रमुख अलोचना इस प्रकार हैं–

1. यह विचारधारा प्रबन्ध में ष्व्यक्तिष को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मान लेती हैं। जबकि व्यवहार में संगठन में दूसरे संसाधन भी महत्वपूर्ण होते हैं।

2. यह विचारधारा प्रबन्ध के कला पक्ष को अधिक प्रकट करती है तथा विज्ञान के प्रति उदासीन रहती है।

3.कुछ आलोचको के अनुसार केवल मानव व्यवहार का अध्ययन ही प्रबन्ध मे सब कुछ नहीं है।

4. इस विचारधारा में मानव संतुष्टि पर अधिक बल दिया गया है, जबकि संतुष्टि केवल क्षणिक होती है।

5. यह विचारधारा प्रबन्ध के कार्यों को कोई महत्व नहीं देती है।

6. यह विचारधारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों तथा उसकी तकनीकों को भी महत्व नहीं देती है।

समूह व्यवहार विचारधारा

यह विचारधारा अन्तवैयक्तिक व्यवहार विचारधारा का ही विस्तार है। अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार विचारधारा व्यक्ति के वैयक्तिक व्यवहार पर आधारीत है जबकि समुह व्यवहार विचारधारा समुह के का अध्ययन हैं। व्यवहार पर केन्द्रित है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबंध ष्समूह व्यवहार प्रारूपों इसके प्रवर्तकों का मत हैं कि प्रबंधकीय कुशलता के लिए समूह या संगठन में ही मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाना चाहिए। इस विचारधारा कि यह भी मान्यता है कि अधिकांश प्रबन्धकीय समस्याए समूह की प्रवृत्तियों, परिवेश, इच्छाओं, दबाओं एवं व्यवहार के कारण उत्पन्न होती है। समूह में व्यक्ति का व्यवहार कई घटकों से प्रभावित होता है। समूह की अनौपचारिक कियाए भी प्रबंध प्रक्रिया पर प्रभाव डालती है। अतः प्रबन्ध का अध्ययन संगठन या समूह व्यवहार पर केंद्रित होना चाहिए दूसरे शब्दों में इस विचारधारा के अनुसार समूह में मानव व्यवहार का अध्ययन ही प्रबन्ध है।

इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्तक गौल्डनर, अमिताई एटजियोनि आदि है। इन्होंने समूहों में मानव व्यवहार का अध्ययन किया है। इसके अनुसार प्रबन्ध का अध्ययन समूह में व्यवहार पर केन्द्रित होता है।

मान्यताएं

इस विचारधारा की प्रमुख मान्यताएं हैं–

1. यह विचारधारा सामाजिक प्रणालियों समूह संगठन, उपक्रम आदि मे सामाजिक एवं समूह व्यवहार से संबंधित हैं।

2. यह विचारधारा व्यवहार वादी समाजशास्त्र पर आधारित है।

3. यह औपचारिक सगंठनो के साथ–साथ अनौपचारित समूहों के व्यवहार पर भी ध्यान देती है।

4. इस विचारधारा मे मान्यता है की समूह मे व्यक्ति का व्यहार बदल जाता है अतःप्रबंधक को समूह व्यवहार पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

प्रक्रिया विचारधारा का मूल्यांकन

प्रक्रिया विचारधारा को प्रयोग में लाने के पक्ष में निम्न तर्क महत्वपूर्ण हैं–

1. इस विचारधारा ने प्रबन्ध के कार्यो व सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके प्रबन्ध कार्य को सरल बना दिया है।

2. यह विचारधारा प्रबन्ध को एक षविशिष्ट कियाष मानती है। इससे प्रबन्ध ज्ञान की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है।

3. निश्चित सिद्धान्तों के कारण प्रबन्धकीय शिक्षण आसान हो गया है।

4. प्रतिपादित सिद्धान्तों के कारण प्रबन्धकीय व्यवहार में समरूपता लायी जा सकती है।

5. इस विचाराधारा ने प्रबन्ध की अन्य विचारधाराओं के लिए एक उचित आधार निर्मित किया है।

6. यह विचारधारा प्रबन्धकों को बाहय वातावरण के प्रति भी सजग करती है।

7. यह स्थैतिक एवं कठोर होते हुए भी लोच, नव प्रवर्तन तथा प्रगति को प्रोत्साहित करती है।

8.यह प्रबन्ध कला को मान्यता देती है तथा प्रबन्ध दर्शन के निर्माण में भी सहायक होती है।

9.यह प्रबन्ध सिद्धान्तों को व्यवहार में लागू करने तथा उनकी निरन्तर जांच करने पर बल देती है।

इस विचारधारा की कुछ कमियां भी हैं। ये निम्न प्रकार हैं–

1. यह विचारधारा तेजी से बदलते हुए वातावरण में धीरे–धीरे लुप्त अथवा संशोधित होती जा रही है। इनका स्थान प्रबन्धकीय भूमिका अथा प्रबन्धकीय कार्य कियाएं अवधारणा लेती जा रही हैं।

2. कुछ विद्वानों के अनुसार यह विचारधारा स्थैतिक Static हैं, जो कि अति संवेदनशील वातावरण में अनुपयुक्त हैं।

3. यह विचारधारा विवेकशील मानव की कल्पना पर आधारित है, किन्तु व्यवहार में मनुष्य का व्यवहार सदैव तर्कयुक्त नहीं होता है।

4. यह विचारधारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों को सार्वभौमिक मानती है, किन्तु प्रबन्ध के सभी सिद्धान्त सार्वभौमिक नहीं होते हैं।

5. इस विचारधारा में अनेक विचारकों ने प्रबन्ध के भिन्न–भिन्न कार्य बताये हैं तथा उनका नामकरण भी एक समान नहीं है।

इन सभी आलोचनाओं के बाद भी प्रक्रिया को प्रबन्धकों द्वारा व्यवहार में व्यापक रूप से अपनाया गया है। इसके पीछे तीन मुख्य कारण रहे हैं– प्रथम, यह विचारधारा प्रबन्ध कार्य में प्रबन्धक की भूमिका को केन्द्र बिन्दु मानती है। द्वितीय, यह उन सभी पहलुओं पर विचार करती है जिनसे प्रबन्धक प्रभावित होता है। तृतीय, यह एक व्यावहारिक विचारधारा है।

इस विचारधारा के विभिन्न पहलुओं में अब परिवर्तन किया जा रहा है। अब इसके संशोधित रूप को स्वीकार किया जा रहा है जिसमें प्रबन्ध के चार आधारभूत कार्यो– नियोजन, संगठन, निर्देशन व नियंत्रण पर बल दिया गया है। समन्वय को समस्त प्रबन्ध प्रक्रिया का

सार माना गया है। इसके नये स्वरूप को संक्रिया विचारधारा Operational Theory के नाम से जाना जाता है।

5. मानव व्यवहार विचारधारा

मानव व्यवहार विचारधारा कर्मचारियों अर्थात् मनुष्यों को प्रबन्धकीय सफलता का केन्द्र बिन्दु मानती है। यह प्रबन्ध को मानवीय सम्बन्धों की पद्धति मानती है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध मानव व्यवहार का अध्ययन है Management is a study of human behaviour.

इस विचारधारा में मानव व्यवहार के अध्ययन हेतु मनोविज्ञान, मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र जैसे व्यावहारिक विज्ञानों का उपयोग किया जाता है। यह विचारधारा प्रबन्ध को मानवीय कौशल एवं मानवीय संवेदना के आधार पर लोगों से कार्य करवाने की कला मानती है। अब तक मानव व्यवहार के अध्ययन की दो विचारधारायें विकसित हुई हैं–

अ. मानवीय सम्बन्ध विचारधारा तथा

ब. समूह व्यवहार विचारधारा।

अ. मानवीय सम्बन्ध विचारधारा Human RelationsApproach–यह विचारधारा मानव की सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं का अध्ययन करके उनकी संन्तुष्टि करने पर बल देती है।

1. यह विचारधारा संगठन को एक सामाजिक जीव के रूप में देखती हैं।

2. यह मानती है कि प्रत्येक संगठन एक सामाजिक संगठन है जिसमें अनेक सामाजिक इकाइयां होती है

3. संगठन से सांस्कृतिक परिवेश के कारण अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों, संघर्षो दबावों आदि का जन्म होता है। इनके अध्ययन से ही प्रबन्ध को समझा जा सकता है।

4. अधिकांश प्रबन्धकीय समस्याओं का जन्म समूह के व्यवहार प्रवृत्तियों तथा इच्छाओं के कारण होता है।

मूल्यांकन

यह विचारधारा समूह व्यवहार को ही प्रबन्धक का अंतिम लक्ष्य मानती है। किन्तु समूह व्यवहार अनेक घटकों से संचालित होता है। कई दशाओं में समूह में व्यक्ति की अभिव्यक्ति, क्रियाएं, सोंच आदि वास्तविक नहीं होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार समूह व्यवहार प्रदर्शन, झूठे आचरण एवं सतही प्रभावों का मिश्रण होता है। कुछ विचारक इसे भीड़ मनोविज्ञान से अधिक नहीं मानते हैं। इस विचारधारा की प्रमुख आलोचनायें निम्न प्रकार हैं–

1. यह विचारधारा समूह व्यवहार पर अत्यधिक बल देती है तथा व्यवसाय के अन्य तत्वों की उपेक्षा करती है।

2. प्रबन्ध के विज्ञान पक्ष को कमजोर बना देती है।

3. समूह व्यवहार प्रबन्ध का एक भाग हो सकता है, सम्पूर्ण प्रबन्ध नहीं। प्रो० कूण्ट्ज डी लिखते हैं कि ''प्रबन्ध को मानव व्यवहार के अध्ययन का क्षेत्र मानना ठीक उसी प्रकार है जैसे हृदय विज्ञान के अध्ययन को ही मानव शरीर का अध्ययन मान लेना।''

4.यह विचारधारामानव संन्तुष्टि परआधारित है, जबकि मानव संतृप्ति अल्पकालिक होती है

5. यह विचारधारा संगठनों में विरोधी की स्थिति पर ध्यान नहीं देती है। यह सामान्य स्थिति में व्यक्ति को सन्तुष्ट करने का रास्ता बनाती है।

6. इसमें प्रबन्ध के कार्यों जैसे नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण, नियंत्रण आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। अतः यह विचारधारा अधूरी है।

7. यह विचारधारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों और उनकी तकनीकों को महत्व नहीं देती है।

इस प्रकार यह विचारधारा अनेक कमियों से ग्रसित है। प्रो० मालकोलम तथा मैकनेयर ने यहां तक लिखा है कि ''यह विचारधारा लोगों के प्रति खेद प्रकट करने, उत्तरदायित्वों से बचने, असफलताओं व भूलों के लिए क्षमा मांगने तक ही सीमित है।''

6. सामाजिक प्रणाली विचारधारा

यह विचारधारा ष्मानवीय व्यवहारष् की विचारधारा से काफी मिलती–जुलती है। कुछ विचारकों का मत है कि कर्मचारियों के वैयक्तिक अथवा सामूहिक व्यवहार से प्रबन्ध–कार्य का अध्ययन करना संभव नही है वरन् इसके लिए सम्पूर्ण संगठन का अध्ययन किया जाना चाहिए। वस्तुतः यह विचारधारा ष्प्रणाली विश्लेषण पर आधरित है।

इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध एक सामाजिक प्रणाली है तथा यह प्रणाली सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धा से मिलकर बनती है। इस विचारधारा के समर्थकों में प्रमुख रूप से चेस्टर बर्नार्ड तथा रेन्सिस लिकर्ट कुर्त लेविन हर्जबर्ग आदि के नाम उल्लेखनीय हैं बर्नार्ड का मत है व्यक्ति अपने संस्था के उद्देश्यों के साथ–साथ अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कार्य करते हैं। अतः कुशल सरकारी तंत्र के माध्यम से ही प्रबंधक व्यक्तिगत सामूहिक एवं सम्पूर्ण समाज के उद्देश्यों की पूर्ति में सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। बर्नार्ड की मान्यता है कि सरकारी तंत्र या प्रणाली औपचारिक रूप से बनने के साथ–साथ अनौपचारिक रूप से भी बनती है।

अनौपचारिक सहाकारी प्रणाली से न केवल व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव होती है। वरन् इनसे लोगों में सहकारिता की भावना का भी विकास होता है। जिससे संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है। इस विचार के अनुसार प्रबन्ध संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के आपसी व्यक्तिगत एवं सामूहिक सांस्कृतिक सम्बन्धों का अध्ययन है।

विशेषताऐं एवं मान्यताऐं

निष्कर्ष रूप में इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएं एवं मान्यताएं निम्नलिखित हैं–

1. इस विचारधारा के अनुसार संगठन एक सहकारी सामाजिक प्रणाली है।

2. यह प्रबन्ध के अध्ययन के लिए समग्र संगठन के अध्ययन को आवश्यकता मानती है।

3. यह विचारधारा प्रणाली दृष्टिकोण पर आधारित है। इसके अनुसार प्रबन्धकों को कार्य करवाने के लिए एक संगठन अर्थात् सामाजिक तंत्र का निर्माण करना पड़ता है।

4. तंत्र की सफलता इसमें कार्यरत व्यक्तियों के आपसी व्यक्तिगत एवं सामूहिक सांस्कृतिक सम्बन्धों पर निर्भर करती हैं।

5. यह प्रबन्ध को एक सहकारी प्रणाली के रूप में देखती है जिससे जुड़े व्यक्तियों की इच्छायें धारणायें विचार दृष्टिकोण वृत्तियां आदि सभी एक दूसरे से पारस्परिक रूप से प्रभावित होती है।

6. यह विचारधारा प्रबन्ध में व्यवहारवादी विज्ञानों जैसे– मनोविज्ञान, समाजविज्ञान आदि के उपयोग पर बल देती है।

7. यह प्रबन्ध समस्याओं का निराकरण सहकारिता के आधार पर करती है।

8. यह विचारधारा मानती है कि प्रबन्ध के समुचित अध्ययन एवं व्यवहार के लिए संस्था के भीतर एवं बाहर कार्यरत सामाजिक समूहों के आपसी सांस्कृतिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

9. यह विचारधारा मानती है कि सामाजिक प्रणाली में व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों के बीच समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

10. यह मानती है कि पारस्परिक सहयोग स्थापित करने के लिए लोग एक इकाई का निर्माण करतें है।

11. इस संगठनात्मक प्रणाली में लोग सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संदेशों का आदान प्रदान करते हैं तथा संहर्ष रूप से योगदान करते हैं।

12. इस विचारधारा के अनुसार सभी सामाजिक परस्पर संघर्ष, विरोध, अन्तरक्रिया एवं सम्बधत्ता के प्रयास चलते रहते हैं।

13. यह विचार धारा प्रबन्ध के अध्ययन के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के संगठनों को अनिवार्य मानती है।

मूल्यांकन

यह विचारधारा प्रबन्ध एवं संगठन के यांत्रिकतां पर चोंट करती है। तथा सम्पूर्ण संगठन के मानवीय संम्बन्धों को एक जैविक प्रणाली के रूप में देखकर अध्ययन करती है। यह प्रणाली कर्मचारियों के अर्न्तव्यवहारों, अन्तरसम्बन्धों तथा परस्परिक सहयोग पर बल देती है। इस प्रकार यह विचारधार संगठन की सजीवता को दर्शाती है। इस विचारधारा के आधार पर

संगठन के विस्तृत स्वरूप को तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक उद्देश्यों एवं आपसी तालमेल को भली प्रकार समझा जा सकता है।

इस विचारधारा के द्वारा प्रबंधक संस्था तथा इसके बाह्य वातावरण में सरलता पूर्वक समन्वय कर सकते हैं तथा संगठन के बाह्य दबावों को आसानी से समझ सकते हैं।

7. प्रबन्ध की कुछ अन्य विचारधाराएं

प्रबन्ध में कुछ अन्य विचारधारयें भी विकसित हुई है। दनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

1. तुलनात्मक प्रबन्ध विचारधारा – इस विचारधारा के समर्थकों में अन्स्ट डेल, गोन्जालेज, मेक्मिलन आदि विद्वानों को शामिल किया जाता है। इस विचारधारा के अनुसार, प्रबन्ध संस्कृतिबद्ध होता है। ओबर्ग का मत हैं कि 'प्रबन्ध सिद्धान्तों का प्रयोग एक विशिष्ट संस्कृति तक सीमित हो सकता है और यह प्रबंध के सामान्य सिद्धान्तों या निर्धारक समाधानों की खोज करने में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते' दूसरे शब्दों में प्रबन्ध के सभी सिद्धान्तों को सभी प्रकार की संस्कृतियों में सामान्य रूप में लागू नहीं किया जा सकता।

डाल्टन मैक फार लैण्ड के अनुसार यह विचारधारा दो बातों पर जोर देती है–

1. यह प्रबन्ध प्रक्रिया की विभिन्न संस्कृतियों के सन्दर्भ में परीक्षण करती है। तथा

2. यह एक ही संस्कृति में भी विभिन्नताओं के आधार पर प्रबन्ध का विश्लेषण करती है। यह विभिन्न संस्कृतियों में विद्यमान प्रबन्ध प्रणालियों का अध्ययन कर कुछ समान्य निष्कर्षो व सिद्धान्तों का विकास करने पर बल देती है।

2. प्रबन्ध की निर्देशात्मक विचारधारा– इस विचारधारा की यह मान्यता है कि प्रबन्धकों का कार्य केवल नीतियों का निर्धारण करना ही नहीं है वरन् उनका सफलता पूर्वक कियान्वयन करना भी है। अतः प्रभावी क्रियान्वयन के लिए प्रबन्धक कर्मचारियों को आवश्यक आदेश निर्देश देते हैं। इस प्रकार यह विचारधारा प्रबन्ध को निर्देशन मानकर चलाती है। प्रबन्धक निर्देशन एवं नेतृत्व योग्यता होने के कारण अपने कर्मचारियों को यह बताते हैं कि उन्हें क्या करना है कब करना है। कार्य की विधियां क्या है तथा कार्य के लक्ष्य क्या है? इस प्रकार कर्मचारियों को निर्देशित करना ही इस विचारधारा की मुख्य बात है।

3. नियमनिष्ट विचारधारा – यह विचारधारा मानती है कि संगठन में नियम कानून तथा औपचारिक नियमनों को लागू किया जाना चाहिए। यह प्रबन्ध विचारधारा की आलोचनायें भी की गयी है। यह निम्न विचारधारा संस्था के सभी सदस्यों के बीच अधिकारों, दायित्वों व कार्य क्षेत्र का स्पष्ट विभाजन चाहती है। इससे जहां एक ओर आपसी हस्ताक्षेप पर रोक लगती है, वहीं दूसरी ओर परास्परिक विवाद व सत्ता सघर्ष भी उत्पन्न नहीं हो पाते हैं। यह विचारधारा कानून व्यवस्था कार्य के स्पष्ट विभाजन तथा विभन्न औपचारिकताओं के निर्माण पर जोर देती है।

4. सहभागिता विचारधारा – यह विचारधारा प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण पर आधारित है तथा अधिनायक वादी प्रबन्ध शैली को अस्वीकार करती है। यह विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि कर्मचारियों को संस्था के प्रबन्ध एवं संचलन में हिस्सा देकर ही प्रबन्ध की सफलता को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके अनुसार कर्मचारियों को जो कार्य की वास्तवविक दशाओं व क्रियान्वयन से जुड़े होते हैं। कार्यों के निर्धारण में भागीदारी बनाकर ही कार्यों को प्रभावकारी ढंग से पूरा किया जा सकता है। यह विचारधारा इस तथ्य में विश्वास रखती है कि अधिक व्यक्तियों द्वारा लिए गये निर्णय सदैव श्रेष्ठ होते हैं। कर्मचारियों को प्रबन्ध में सहभागी बनाकार निर्णयों को सरलता पूर्वक क्रियान्वित किया जा सकता है। तथा उनका वांछित सहयोग प्रदान किया जा सकता है।

5. निरीक्षण एवं संतुलन विचार धारा – यह विचारधारा मानती है कि प्रबन्ध की सफलता के लिए प्रबन्धकों पर अंकुश लगाया जाना आवश्यक है। इसके समर्थकों का मत है कि व्यक्ति सत्ताप्राप्त कर भ्रमित एवं भ्रष्ट हो जाते हैं तथा अपनी मर्यादाओं को भूल जाते हैं। अतः कार्य निष्पादन हेतु जब सत्ता व अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जाता है तो यह नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है कि विकेन्द्रित सत्ता का दुरूपयोग न हो। दूसरे शब्दों में प्रबन्धकों को शक्ति देने के साथ ही उन पर पर्याप्त नियंत्रण की व्यवस्था भी लागू की जानी चाहिए। इस प्रकार अधिकारों व सत्ता का दुरूपयोग रूकेगा तथा सामाजिक हितों की अनदेखी नहीं हो सकेगी।

6. उद्यमिता विचारधारा– यह विचारधारा मानती है कि प्रबन्ध एक उद्यमी कौशल है। एक व्यक्ति कुछ विशेष गुणों को विकसित करके तथा संगठन के वातावरण को उद्यम अभिमुखी बनाकर सफलतापूर्वक प्रबन्ध कर सकता है। इस विचारधारा के अनुसार कुशल प्रबन्ध के लिए व्यक्तियों में निम्नलिखित योग्यता विकसित की जानी चाहिए–

क. वाणिज्य दृष्टि तथा बाजार व वातावरण की समझ।

ख. पेशेवर उत्साह तथा दृढ़ चरित्र।

ग. व्यावसायिक मामलों को हल करने की दृढ़ता।

घ. समस्या समाधानों में नवप्रवर्तनकारी एवं सृजनात्मक दृष्टिकोण।

ड़. व्यक्ति के साथ व्यवहार करने– उन्हें सजीव बनाने तथा उनमें कार्य सम्पन्न करने के गुण विकसित करने की योग्यता।

यह विचारधारा मानती है कि श्उद्यमीय कौशल के विकास में संगठन की भूमिका होती है। संगठन को अपने कर्मचारियों के गुणों एवं योग्यता तथा उनकी सम्भावना को स्वीकार करना चाहिए। संगठन को परिवर्तनों की गति से ज्यादा शीघ्रता से अपने को विकसित करना चाहिए। वैयक्तिक क्षमताओं और संगठनात्मक हित के अनुसार संगठन को आन्तरिक व बाह्य पुरस्कार प्रदान करने की व्यवस्था भी निर्मित करनी चाहिए।

7 व्यावसायिक नीति एवं व्यूहरचना स्कूल– इस स्कूल के प्रथम प्रवर्तक एच०आई०एनसोफ रहे हैं। उन्होंने संगठनात्मक एवं संचालकीय व्यूहरचना की समग्रता एवं जटिलता से सम्बन्धित विचारधाराओं का प्रतिपादन किया है उन्होंने बताया कि व्यावसायिक

प्रबन्धक ऐसे विवेकपूर्व एवं सही तरीके निर्धारित कर सकते हैं जिनके द्वारा संगठन वातावरण में होने वाले परिवर्तनों की खोज कर सकता है और उनके साथ समायोजन कर सकता है। ऐनसोफ प्रथम विचारक हैं जिन्होंने परिवर्तन के लिए व्यूहरचना तथा इसके प्रबन्ध में सक्रिय प्रक्रियाओं का प्रतिपादन किया। वर्तमान में मिचेल ई० पार्टर व्यावसायिक नीति एवं व्यूहरचना के क्षेत्र में एक प्रमुख विचारक हैं। जिन्होंने व्यूहरचना प्रक्रियाओं, प्रतिस्पर्धात्मक अवसर आदि अवधारणाओं पर गहन अध्ययन किये हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में बढ़ते परिवर्तनों, उपद्रवों, अस्तव्यस्तता, धुंधलेपन, विक्षोभ, खलबली एवं हलचल के कारण व्यावसायिक एवं लोकनीति तथा व्यूहरचना का महत्व बढ़ता जा रहा है।

8 प्रबन्ध–उत्कृष्टता की विचारधारा – 1970 में मैक्किन्से ने प्रबन्ध में उत्कृष्टता की अवधारणा पर बल दिया था। इसके अन्तर्गत उच्च निष्पादन क्षमता एवं छवि वाले व्यवसायों एवं प्रबन्धकों का अध्ययन करके उन गुणों एवं लक्षणों का निर्धारण किया गया जिनसे प्रबन्धकीय उत्कृष्टता को बढ़ाया जा सकता है। पीटर्स एवं वाटरमैन ने 1982 में उत्कृष्ट संगठन का एक मॉडल प्रस्तुतकिया था। तथा उन गुणों व लक्षणों का निर्धारण किया था जो कि प्रबन्ध उत्कृष्टता के लिए आवश्यक होते हैं।

इकाई–2

प्रबन्ध के कार्य प्रक्रिया एवं भूमिकायें (Functions, Process and Roles of Management)

प्रबन्ध के कार्य (Functions of Managemen)

प्रबन्ध विभिन्न कार्यों का निष्पादन करते हुए संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने की एक प्रक्रिया है। प्रबन्ध कुछ मूलभूत कार्यों से मिलकर बनी एक प्रक्रिया है। पीटर ड्रकर लिखते हैं कि ष्प्रबन्ध व्यावसायिक उपक्रम का एक विशिष्ट अंग है तथा अंगों की परिभाषा एवं वर्णन उनके कार्यों द्वारा ही श्रेष्ठ ढंग से हो सकता है।ष प्रबन्ध अन्य व्यक्तियों के द्वारा तथा उनके साथ मिलकर कार्य करवाने की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, प्रबन्धक को कार्य का निष्पादन करवाने एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए क्या कार्य करने होते है, यह जानना महत्वपूर्ण है। विभिन्न विद्वानों ने प्रबन्धकों के कार्यो की संख्या एवं नाम अलग–अलग बताये हैं, यद्यपि प्रबन्धक के मूलभूत कर्तव्यों के सम्बन्ध में वे एकमत हैं।

विभिन्न प्रबन्धकों एवं विद्वानों के मत के आधार पर प्रबन्ध – कार्यो को निम्नलिखित दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. प्रमुख कार्य –1. नियोजन, 2. संगठन, 3. निर्देशन, 4. समन्वयन, 5 नियंत्रण।

2. सहायक कार्य –1. नियोजन, 2. नियुक्ति, 3. सम्प्रेषण, 4. नवप्रवर्तन, 5. प्रतिनिधित्व।

1. नियोजन (Planning) – नियोजन प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक कार्य है। प्रबन्ध इसके द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कार्यो का अंग्रिम रूप से निर्धारण करता है। नियोजन कार्यक्रमों, नियमों, कार्य–पद्धतियों, बजटों व व्यावसायिक व्यूहरचना का निर्माण करते है। नियोजन भविष्य में झाँकने, भावी दशाओं का मूल्यांकन करने व वैकल्पिक गतिविधियों को खोजने की प्रक्रिया है।

मैरी कुशिंग नाइन्स (Marry Cushing Niles) के अनुसार, ''नियोजन एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रेष्ठ कार्यविधि का चयन एवं विकास करने की जागरूक प्रक्रिया है।''

गोट्ज (Geotyz) ने लिखा है कि ''नियोजन मूल रूप से एक चयन प्रक्रिया है तथा नियोजन की समस्या का जन्म कार्य के वैकल्पिक तरीकों की खोज के साथ होता है।''

नियोजन के लिए सामान्यतः निम्नलिखित कदम उठायें जाते है –

(1) वातावरण तथा संस्था के साधनों का मूल्यांकन करना।

(2) उद्देश्यों का निर्धारण करना।

(3) नियोजन की आधारभूत मान्यताओं को निर्धारित करना।

(4) वैकल्पिक उपायों की खोज तथा परीक्षण करना।

(5) किसी श्रेष्ठ विकल्प का चयन करना।

(6) आवश्यक सहायक योजनाओं का निर्माण करना।

(7) योजना का क्रियान्वयन एवं अनुवर्तन करना।

नियोजन करनेके लिए अनेक तत्वों व घटकों को भी निर्धारित करना होता है। ये निम्नानुसार हैं–(1) उद्देश्य (2) नीतियाँ (3) कार्यविधियाँ (4) प्रविधियाँ (5) नियम (6) बजट (7) व्यूहरचना (8) परियोजना (9) प्रमाप (10) समय–सूचियाँ आदि।

2. संगठन (Organising) – नियोजन के अंतर्गत प्रबन्धक उपक्रम के लक्ष्य निर्धारित करता है, किन्तु इनकी पूर्ति के लिए विभिन्न साधनों को एकत्रित करने तथा उनमें कार्यकारी सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य संगठन के अंतर्गत किया जाता है। संगठन विभिन्न कार्यो का समूहीकरण करने, कार्यों का वितरण करने तथा सम्बन्धित व्यक्तियों को अधिकार एवं दायित्व सौंपने की प्रक्रिया है। संगठन कार्य–स्थितियों का निर्माण करने व औपचारिक सह–सम्बन्धों का ढाँचा तैयार करने की विधि है।

जी.ई. मिलवर्ड (GE Milward) के अनुसार, ''कर्मचारी और उनके कार्यो में एकीकरण और सामंजस्य स्थापित करने की क्रिया को संगठन कहते हैं।'' ई.एफ.एल. ब्रैच के शब्दों में, ''संगठन प्रबन्ध का ढाँचा है।'' चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार, ''समन्वित कियाओं तथा शक्तियों की प्रणाली को संगठन कहते है।''

संस्था के संगठन के लिए प्रबन्धकों को निम्न कार्य करने पड़ते हैं–

(1) क्रियाओं का निर्धारण करना।

(2) क्रियाओं का समूहीकरण करना।

(3) क्रिया–समूहों को विभागों को सौंपना।

(4) क्रियाओं के लिए अधिकारों व दायित्वों का निर्धारण करना।

(5) आपसी कार्य–सम्बन्धों का निर्धारण करना।

बर्नार्ड नें संगठन की प्रणाली के तीन आवश्यक तत्व बताये हैं–(1) सदस्यों द्वारा सहयोग की इच्छा, (2) सम्प्रेषण (3) सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति।

3. निर्देशन (Directing) –इस कार्य को लेखकों ने कई नामों से सम्बोधित किया है, जैसे– अभिप्ररण (Motivation), नेतृत्व (Leadership), उत्प्रेरण (Actuating), प्रभावीकरण (Influencing), आदेश देना (Commanding) आदि।

टेरी (Terry) के अनुसार निर्देशन में, ''किसी कार्य को गति देना व्यवहार में परिणित करना तथा गति समूह को प्रेरणात्मक शक्ति प्रदान करना शामिल है।''

स्ट्रोंग (Strong) के अनुसार निर्देशन (1) अधीनस्थों को कार्य के बारे में निर्देश देना, और (2) उन्हें कार्य करने के लिए आदेश देना सम्मिलित है।

वास्तव में निर्देशन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, जिसमें निम्न कार्य शामित होते है– (1) पर्यवेक्षण, (2) सम्प्रेषण, (3) अभिप्रेरण तथा (4) नेतृत्व।

(i) पर्यवेक्षण (Supervision) – यह कार्य प्रबन्धक द्वारा अपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करने से सम्बन्धित हैं। इसमें प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को कार्य करने के ढंग प्रक्रिया एवं नियमों की जानकारी देते है। प्रबन्धक लक्ष्यों की प्राप्ति में कर्मचारियों का मार्गदर्शन करते है।

(ii) सम्प्रेषण –इस कार्य के अंतर्गत प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को कार्य के सम्बन्ध में आदेश–निर्देश प्रदान करते है, विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्रेषित करते हैं तथा उनकी शिकायतों व सुझावों को सुनते हैं। सम्प्रेषण सदैव ही विचारों व तथ्यों के आदान–प्रदान की द्विमार्गीय व्यवस्था होती है। इसमें प्रबन्ध के उच्च स्तरों से निर्देशों तथा निम्न स्तरों से कार्य की प्रगति की रिपोर्ट, समस्याओं आदि का प्रवाह होता है।

(iii) अभिप्रेरण– अभिप्रेरण के अंतर्गत प्रबन्धक अपने कर्मचारियों में कार्य भावना तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना का विकास करते है। प्रबन्धक कर्मचारियों की भौतिक, सामाजिक व मानसिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करके इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उन्हें प्रेरित करते है। इस हेतु प्रबन्धक कर्मचारियों को वित्तीय प्रेरणायें (अधिक वेतन, बोनस, अनुलाभ) तथा गैर–वित्तीय संतुष्टि (पदोन्नति, सम्मान, मान्यता, सहभागिता) आदि प्रदान करते है।

(iv) नेतृत्व (Leading) – प्रबन्धक उचित नेतृत्व प्रदान करके कर्मचारियों को अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। नेतृत्व में दो प्रमुख कार्य शामिल हैं– (i) प्रबन्धकों का व्यवहार एवं आचरण जिसके द्वारा वे अपनी संस्था के मूल्यों व आदर्शों को प्रकट करते है। इसमें संस्था निर्माण के कार्य आते हैं। (ii) प्रबन्धक अपने गुणों, कार्यशैली एवं अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार से भी कर्मचारियों को निश्चित लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। वे अधीनस्थों के लिए अनुकरणीय बनकर उसमें कार्यनिष्ठा, लगन व परिश्रम की भावना का विकास करते है।

4. आदेश देना (Commanding) – यह कार्य संगठन की गतिशीलता से सम्बन्धित है। इसमें आदेश–निर्देश प्रदान करके कार्य का संचालन किया जाता है। इसका उद्देश्य कर्मचारियों के प्रयासों का अधिकतम उपयोग करना है।

5. नियंत्रण (Controlling) – नियंत्रण प्रबन्ध का वह कार्य है जिसमें वास्तविक निष्पादन की निष्पादन प्रमापों के साथ तुलना करके विचलन ज्ञात किया जाता है ताकि सुधारात्मक कार्यवाही की जा सके। इसमें प्रबन्धक यह देखता है कि संस्था के समस्त कार्य का निष्पादन निश्चित योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं।

हेनरी फेयोल (Henry Fayol) के अनुसार ''नियंत्रण का आशय यह जांचने से है कि संस्था के सभी कार्य, अपनाई गयी योजनायें, दिये गये निर्देश, निर्धारित नियमों के अनुसार हो रहे

हैं या नहीं। नियंत्रण का उद्देश्य कार्य की कमियों या त्रुटियों का पता लगाना है जिससे यथासमय उनमें सुधार किया सके तथा भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति रोकी जा सके।''

नियंत्रण प्रक्रिया के चार प्रमुख तत्व हैं– (i) लक्ष्यों एवं प्रमापों का निर्धारण करना, (ii) कार्यों का मुल्यांकन करना, (iii) वास्तविक प्रगति की निर्धारित प्रमापों से तुलना करना तथा (iv) विचलन हेतु सुधारात्मक कार्यवाही करना।

6. संमन्वय (Co-ordinating)– संगठन के भौतिक एवं मानवीय साधनों में समन्वय स्थापित करना प्रबन्धक का यह महत्वपूर्ण कार्य है। संगठन में कर्मचारियों की क्रियाओं, कार्यविधियों, कार्य क्षमताओं व गुणों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। किन्तु प्रबन्धक को इनके प्रयासो में एकरूपता व सामंजस्य उत्पन्न करना होता हैं ताकि न्यूनतम लागत पर निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। यह सामूहिक प्रयासों में तालमेल बिठाने एवं उन्हे सुव्यस्थित करने की प्रक्रिया है। कई लेखकों ने समन्वय को प्रबन्ध का एक पृथक् कार्य नहीं माना है, बल्कि उसे प्रबन्ध के उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया है। कून्ट्ज तथा ओडोनेल का कथन है कि समन्वय प्रबन्ध का सार है (Co-ordination is the essence of management)। मूने (Mooney) ने इस संगठन का प्रथम सिद्धान्त माना है। उर्विक (Urwick) ने कहा है कि ''संगठन का उद्देश्य ही समन्वय करना होता है।''

बर्नार्ड ने लिखा है कि ''समन्वयं किसी संगठन के जीवित रहने के लिए महत्वपूर्ण तथ्य है।'' लूथर गुलिक ने समन्वय को प्रबन्ध का अनिवार्य कार्य मानते हुए लिखा है कि ''यदि प्रबन्ध में कार्य विभाजन के बिना कार्य नहीं चल सकता है तो समन्वय आवश्यक हो जाता है।''

7. निर्णयन (Decision-making)– प्रबन्धक जो कुछ भी करते है निर्णयन के द्वारा ही करते हैं अतः यह प्रबन्धकीय कार्य प्रबन्ध के प्रत्येक कार्य में अपर्याप्त होता है। इस प्रकार विद्वान इसे प्रबन्ध का एक पृथक् कार्य नहीं मानते है किन्तु निर्णयन प्रबन्धकों का एक आधारभूत कार्य होता है। यह कार्य के वैकल्पिक उपायों में से एक श्रेष्ठ विकल्प के चयन की प्रक्रिया है। कुछ विद्वानों ने निर्णयन को अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य माना है। रोस मूरे (Ross Moore) के अनुसार– प्रबन्ध का आशय निर्णयन है (Management nmeans decision&naking)। कौपलेण्ड (Copeland) के शब्दों में ''प्रशासन मूलतः एक निर्णयन प्रक्रिया है।'' हरबर्ट साइमन (Herbert Simon) ने तो यहाँ तक लिखा है कि ''निर्णयन एवं प्रबन्ध समानार्थक है (Decision-making is synonymous with managing)।''

कूण्ट्ज तथा वीहरिच के शब्दों में–''निर्णयन किसी कियाविधि (Course ofAction) के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चयन करना है।'' पेटरसन (Paterson) लिखते हैं कि ''प्रबन्धक वह व्यक्ति है जो निर्णय लेता है। कभी वह सही निर्णय लेता है किन्तु निर्णय सदैव लेता है।''

8. नियुक्ति करना (Staffing) – संगठन संरचना के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं– (i) भौतिक संरचना तथा (ii) मानवीय संरचना। भौतिक संरचना में यंत्र, उपकरण, मशीनें, भवन, वित्त सामग्री आदि साधनों का एकीकरण सम्मिलित है जबकि मानवीय संरचना में योग्य कर्मचारियों की प्राप्ति एवं विकास के कार्य आते हैं। प्रबन्धक उचित व्यक्ति चयन करके

उचित स्थान पर उसकी नियुक्ति करता हैं। नियुक्ति के कार्य में कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना पदोन्नति करना, मूल्यांकन करना,पारिश्रमिक देना, निवृत्ति देना आदि कियायें भी सम्मिलित हो जाती हैं। संगठन की योजनाओं व लक्ष्यों में परिवर्तन हो जाने, कर्मचारियों में परिवर्तन होते रहने के कारण नियुक्ति का कार्य सतत् चलता रहता है।

अच्छे कर्मचारी संस्था की सम्पत्ति होते हैं। संस्था उसके गुणी कर्मचारियों से जानी जाती है, पूँजी व संयंत्र से नहीं। ड्रकर ने उचित ही कहा है कि ''व्यवसाय व्यक्तियों से बनता है (Business is People)।''

9. सम्प्रेषण (Communicating) – सम्प्रेषण प्रबन्ध व कर्मचारियों के मध्य पारस्परिक विचारों तथ्यों सूचनाओं एवं भावनाओं का आदान–प्रदान है। कीथ डेंविस के अनुसार ''सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसमें संदेश व समझ को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।'' इस प्रकार सम्प्रेषण प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर संदेशों, सम्मतियों, व सूचनाओं का प्रसारण है ताकि कर्मचारी वर्ग कुशलतापूर्वक कार्य का निष्पादन कर सके। पीटर्स (Peters) ने कहा है कि ''अच्छा संदेशवाहन सुदृढ़ प्रबन्ध की नींव हैं।'' चेस्टर आई. बर्नार्ड ने लिखा है कि ''सम्प्रेषण प्रणाली का विकास करना प्रबन्ध का पहला कार्य है।'' चार्ल्स ई. रैडफील्ड ने तो यहाँ तक कहा है कि "सम्प्रेषण संगठन को सुदृढ़ बना सकता है अथवा उसके विनाश का कारण बन सकता है।''

सम्प्रेषण के लिए प्रबन्धक लिखित, मौखिक, सांकेतिक एवं दृश्य श्रव्य संचार साधनों का उपयोग करता है। सम्प्रेषण की कई प्रमुख विधियाँ हैं जैसे– परामर्श, सभाएँ, सम्मेलन, गोष्ठियाँ, व्यक्तिगत सम्पर्क, कर्मचारी सहभागिता आदि। इन विधियों के द्वारा भ्रम, मनमुटाव दुर्भावनाओं, संचार, दूरी, अफवाहों (Grapevine) आदि को दूर किया जा सकता है।

लाभ कार्य के लिए प्रबन्धन का प्राथमिक कार्य है, हितधारकों की एक रेंज की संतुष्टि इसमें प्रारूपिक रूप से शामिल हैं लाभ कमाना (शेयरधारकों के लिए) कीमती उत्पादों को उचित मूल्यों पर बनाना (ग्राहकों के लिए) और रोजगार के अच्छे अवसर उपलब्ध करना (कर्मचारियों के लिए) गैर लाभ प्रबन्धन में दान दाताओं के विश्वास को बनाये रखने के लिए महत्व बढ़ाना प्रबन्धनध्प्रशासन (Governance) के अधिकांश मामलो में शेयर धारक निदेशक मण्डल (board of directors) के लिए वोट करते हैं और फिर मंडल वरिष्ठ प्रबन्धन कि नियुक्ति करता है कुछ संगठनों ने प्रबन्धकों के चयन और समीक्षा के लिए अन्य विधियों (जैसे कर्मचारी मतदान मोडल) पर प्रयोग किये हैं लेकिन यह कभी कभी ही होता है।

उन देशों के सार्वजनिक क्षेत्र में जो प्रतिनिधि लोकतन्त्र (Representative Democracies) के रूप में गठित हैं मतदाता सार्वजनिक कार्यालय के लिए नेताओं का चुनाव करते हैं। ऐसे राजनेता कई प्रबन्धकों और प्रशासकों को किराये पर लेते हैं और कुछ देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीति में नियुक्त किये गए लोग एक नए राष्ट्रपति ध्ध राज्यपाल ध्ध महापौर के चुनाव पर अपनी नौकरी खो देते हैं सार्वजनिक निजी और स्वयंसेवी क्षेत्र प्रबंन्धकों पर भिन्न मांगे रखते हैं लेकिन सभी को उनका विश्वास रखना होता है, जो उनका चयन करते हैं (यदि वे अपनी नौकरी बनाये रखना चाहते हैं) उन लोगों का विश्वास बनाये रखना होता है जो उस संगठन को फंड देते हैं और उन लोगो का विश्वास

बनाये रखना होता है जो संगठन के लिए कार्य करते हैं यदि वे कर्मचारियों को नौकरी छोड़ने के बजाय वहां बने रहने के लाभों को बताने में असमर्थ रहते हैं वे संगठन को किराये पर लेने प्रशिक्षण देने फायरिंग और भरती करने के नीचे की और जा रहे एक सर्पिल में टिप कर देते हैं प्रबन्धन के पास संगठन की क्रियाविधि को सुधारने और नवीनीकृत करने का भी काम होता हैं।

प्रबन्धकीय कार्यों का सापेक्षिक महत्व (Relative Importance Functions)

एक प्रबन्धक को अनेक कार्य करने पड़ते हैं जिनका सापेक्षिक महत्व स्थान समय परिस्थिति एवं संस्था के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है, मिन्जबर्ग ने प्रबन्ध कार्यो के बारे में शोध अध्ययन करके उनके सापेक्षिक महत्व के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं–

1. सभी प्रबन्धकीय कार्यो का सापेक्षिक महत्व समान नहीं होता हैं। फलतः प्रबन्धक सभी कार्यो पर समान अनुपात में समय नहीं देते हैं।

2. सभी स्तरों के प्रबन्धक प्रबन्ध के सभी कार्य करते हैं यद्यपि उनकी मात्रा अत्याधिक होती है।

3. उच्च प्रबन्धक अपना अधिकांश समय नीति निर्धारण, नियोजन, परिवर्तनों एवं संगठन विकास में लगाते हैं।

4. मध्यवर्ती प्रबन्धक अपना अधिकांश समय नेतृत्व अभिप्रेरण या संगठन के कार्यो में लगाते हैं। वे नियोजन परिवर्तनों तथा नियंत्रण कार्यो में बहुत कम समय देते हैं।

5. प्रथम पंक्ति प्रबन्धक अपने समय का सर्वाधिक भाग पर्यवेक्षण, सम्प्रेषण, नियंत्रण अभिप्रेरण एवं निर्देशन आदि कार्यों में लगाते हैं। वे नियोजन एवं संगठन कार्यो को बहुत कम करते हैं।

प्रबंधन : एक अंतर–संबंधित प्रक्रिया (Management:An Interrelated Process)

प्रक्रिया कार्यों को करने का एक व्यवस्थित ढंग है (A process is a systematic way of doing things)। ब्रैच (Breach) ने ठीक ही कहा है कि ''प्रबन्ध की सच्ची प्रकृति को समझना उसे एक प्रक्रिया के रूप में देखना है जो कई आवश्यक तत्वों से मिलकर बनती है।'' प्रबन्ध कुछ निश्चित कार्यों के द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है। फेयोल ने भी लिखा है कि प्रबन्ध कार्यों की प्रक्रिया है। स्पष्ट है कि प्रबन्ध कुछ कार्यो की एक श्रृंखला है तथा इन कार्यों को करने से ही प्रबन्ध प्रक्रिया का जन्म होता है। अनेक विद्वानों के अनुसार प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसमें नियोजन संगठन निर्देशन एवं नियंत्रण के कार्य सम्मिलित हैं। प्रबन्ध प्रक्रिया के द्वारा संस्था के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ प्रयोग किया जाता है ताकि संस्था के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। अनेक विद्वानों ने अपनी परिभाषाओं में प्रबन्ध को नियोजन संगठन निर्देशन एवं नियंत्रण आदि मूलभूत तत्वों से मिलकर बनी एक प्रक्रिया बताया है। व्यवहार में प्रबन्ध प्रक्रिया पृथक–पृथक् कियाओं से मिलकर नहीं बनती है। वास्तव में यह

'अन्तर्सम्बन्धित कार्यो का एक समूह' (A group of inter related functions) है जिसे एक विशिष्ट क्रम में तथा अनेक कार्यों के साथ–साथ निष्पादित किया जाता है।

प्रबन्ध प्रक्रिया के लक्षण

1. प्रबन्ध प्रक्रिया के सभी कार्य (तत्व) आपस में सम्बन्धित एवं अर्न्तसम्बन्धित होते है।

2. प्रत्येक कार्य दूसरे सभी कार्यों से पारस्परिक रूप से प्रभावित होता है तथा प्रभावित करता. है।

3. सभी प्रबन्धकीय कार्यो कोएक निश्चित प्रक्रिया में पूरा करना पड़ता है।

4. प्रबन्ध प्रक्रिया सार्वभौमिकहै। जहाँ भी सामूहिक मानवीय प्रयासों के द्वारा किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य किया जाता है वहीं प्रबन्ध प्रक्रिया आवश्यक हो जाती है।

5. प्रबन्ध प्रक्रिया सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक संस्थाओं में अपनायी जाती है।

6. प्रबन्ध प्रक्रिया किसी राजनीतिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था (जैसे पूँजीवादी, साम्यवादी या समाजवादी) के साथ बंधी हुई नहीं है। यह देशों राज्यों समाजों एवं संस्कृतियों में अपनायी जाती है। यह सर्वव्यापी प्रक्रिया है।

7. यह सभी प्रकार के व्यावसायिक एवं गैर व्यावसायिक संगठनों में अपनायी जाती है। प्रबन्ध प्रक्रिया का निष्पादन न केवल व्यावसायिक कार्यो के लिए किया जाता है वरन इसे सभी प्रकार की आर्थिक सामाजिक राजनैतिक सांस्कृतिक संस्थाओं के प्रबन्ध के लिए अपनाया जाता है।

प्रबन्धकीय कियाएँ अथवा भूमिका दृष्टिकोण(ManagerialActivities or RolesApproach)

प्रबन्ध विचारधारा में यह एक नया दृष्टिकोण है जो यह बताता है कि ष्प्रबन्धक वास्तव में क्या करते हैं?" (What managersActually do?) इस दृष्टिकोण को अत्यधिक महत्व देने वाले प्रबन्ध विचारक मैकगिल विश्वविद्यालय के प्रो. हेनरी मिन्ट्जबर्ग (Henry Mintzbert) हैं। उन्होंने विभिन्न संगठनों में प्रबन्धकों की क्रियाओं का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि ''वास्तव में प्रबन्धक परम्परागत प्रबन्धकीय कार्यो–नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय, नियन्त्रण आदि को करने के बजाय विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में व्यस्त रहते है।'' (Managers do notAct out the classical classification ofActivities)। मिन्ट्जबर्ग ने प्रबन्धकों के परम्परागत कार्यो को लोक–रीति (Folklore) के आधार पर वर्गीकृत कार्य बताया है।

मिन्ट्जबर्ग ने प्रबन्धकों के कार्यों के बारे में निम्न निष्कर्ष बताये हैं–

1. प्रबन्धक कार्य के दौरान विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ (Activities) सम्पन्न करते हैं। इन्हें मिन्ट्जबर्ग ने भूमिकायें (Roles) कहा है। उनके अनुसार भूमिका से तात्पर्य व्यवहारों से

संगठित समूहों (Organised set of behaviours) से है। भूमिका किसी व्यक्ति का व्यवहार प्रारूप (Behaviour pattern) है, जिसकी आशा सामाजिक इकाई के दौरान उस से की जाती है।

2. प्रबन्धक की भूमिकायें ऐसे साधन (Means) हैं जिनके द्वारा नियोजन, संगठन, नियन्त्रण आदि कार्यो का निष्पादन किया जाता है। ये भूमिकायें –कर्त्तव्यों, कार्यों, नीतियों व कार्य।

(i) नीतियों तथा कार्य विधियों का मूल्याकंन।

(ii) बजट प्रशासन (BudgetaryAdministration)।

(3) तकनीकी क्रियायें (TechnicalActivities)

दायित्वों(Tasks), कार्यभार (Assignments) आदि के रूप में होती हैं जो प्रबन्धकों के कार्यो (नियोजन, संगठन, नियन्त्रण आदि) के निष्पादन में सहायक होती हैं।

3. मिन्ट्जबर्ग के अनुसार कार्यात्मक दृष्टिकोण (FunctionalApproach) तथा किया या भूमिका दृष्टिकोण (Activities or RoleApproach) में कोई टकराव नहीं है, वरन ये दोनों परस्पर सहायक एवं पूरक हैं।

4. उनका मत है कि समस्त प्रबन्धकों को अपनी संगठनात्मक इकाई में औपचारिक सत्ता एवं पद मिला होता है। इस सत्ता व पद के कारण ही उनके अपने अधीनस्थों समान पद वाले प्रबन्धकों आदि के साथ अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध बनते हैं तथा इन्हीं सम्बन्धों के फलस्वरूप उन्हें भूमिकायें (Roles) सूचनात्मक निर्णयात्मक आदि निभानी होती है।

मिन्ट्जबर्ग (Mintzberg) के अनुसार प्रबन्धक 10 प्रकार की भूमिकायें निभाते हैं जिन्हें निम्न तीन श्रेणियों में बाटाँ जा सकता है–

A. अन्तर्वैयक्तिक भूमिकायें

B. सूचनात्मक भूमिकायें एवं

C. निर्णयात्मक भूमिकायें।

A. अन्तर्वैयक्तिक भूमिकायें (Intepersonal Roles)

अपनी औपचारिक सत्ता पद एवं स्थिति के कारण प्रबन्धक अन्तर्वैयक्तिक भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। इन भूमिकाओं में निम्नलिखित शामिल हैं–

1. सस्था अध्यक्ष (Figurehead) –इस भूमिका में अपनी संस्था का मुखिया या अध्यक्ष होने के नाते प्रबन्धक वैधानिक प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करते हैं, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा समारोह आदि की अध्यक्षता करते हैं।

(i) तकनीकी समस्याओं का निराकरण।

(ii) तकनीकी कार्य करना।

(3) वैयक्तिक क्रियायें (PersonalActivities)

(i) अपने समय का प्रबन्ध करना (Managing own time)।

(ii) अपने कैरियर व प्रबन्धकीय कौशल का विकास करना।

(iii) निजी मामलों को निपटाना।

दोनों दृष्टिकोणों में सामंजस्य (A Syntesis between two views)

कई प्रबन्ध विद्वान एवं लेखक प्रबन्ध के क्रिया अथवा भूमिका अभिमुखी दृष्टिकोण (WorkActivitiy of Role Concept) से पूर्णतः सहमत नहीं हैं। उदाहरण के लिए महान प्रबन्ध विचारक पीटर ड्रकर प्रबन्ध क्रियाओं में नियोजन संगठन निर्देशन तथा नियन्त्रण को ही शामिल करते है। वे मिन्ट्जबर्ग द्वारा वर्णित प्रबन्धकीय भूमिकाओं को प्रबन्धकों की कुल क्रियाओं के समूह का गैर प्रबन्धकीय (Non managerial) भाग मानते है। उनका कथन है कि प्रत्येक प्रबन्धक कई ऐसे कार्य करता है जो प्रबन्धन नहीं होता यद्यपि वह उन पर अपना अधिकांश समय व्यतीत कर सकता है। (Every manager does many things thatAre not related with management but He may spend most of his time on them)।

किन्तु दूसरी ओर प्रो. मिन्ट्जबर्ग का मत है कि कार्यात्मक दृष्टिकोण यह नहीं बताता है कि वास्तव में प्रबन्धक करते क्या हैं (What managersActually do?) तथा जब तक हम यह नहीं जानते कि प्रबन्धक करते क्या हैं (क्रिया दृष्टिकोण), हम प्रबन्ध के ज्ञान एवं व्यवहार में कोई सुधार नहीं कर पायेंगे द्य वास्तव में मिन्ट्जबर्ग इन दोनों दृष्टिकोण में कोई टकराव नहीं मानते हैं वरन् दोनों को एक दूसरे का पूरक बताते है। यह टकराव तो प्रबन्ध के कार्यों (Functions or Processes) को निरपेक्ष रूप में देखने के कारण उत्पन्न होता है। खण्ड दृष्टि के कारण यह मतभेद दिखाई देता है। डेविड हेम्पटन (Devid Hampton) का कथन है कि व्यवहार में प्रबन्धक प्रक्रिया एवं क्रिया (Process and WorkActivity) दोनों दृष्टिकोणों में सामंजस्य रखते हुए कार्य करते है तथा प्रत्येक दृ ष्टिकोण प्रबन्ध की प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को देखने में सहायक होता है। दोनों दृ ष्टिकोण के सम्बन्ध एवं सामंजस्य को स्पष्ट किया जा सकता है।

इकाई–3

संगठानात्मक व्यवहार(Organisational Behaviour)

संगठन मानवीय प्रयासों एवं सामूहिक क्रियाओं के द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करने की सामाजिक प्रणालियाँ हैं। संगठन कार्य ढाँचे कार्य सम्बन्धों, प्रौद्योगिकी तथा मानवीय व्यवहार का मिश्रण है। 'मानवीय व्यवहारश संगठन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटक है। मैक कॉरमैक (McCormack) का कथन है कि व्यक्तियों के साथ कैसे व्यवहार किया जाये, (How to deal with people) यह जान लेना व्यावसायिक सफलता का मुख्य तत्व है।

किसी भी संगठन में मानवीय व्यवहार को समझ लेना बहुत आवश्यक होता है। संगठन में कार्य करने वाले कर्मचारी मूलतः मानव होते हैं जिनसे कार्य लेने के लिए उनकी भावनाओं आवश्यकताओं प्रवृत्तियों दृष्टिकोण मनःस्थिति तथा उन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना जरूरी होता है। संगठन में कर्मचारी का व्यवहार अणु की भाँति होता है जो अनेक रहस्यों एवं अज्ञात शक्तियों से परिपूर्ण होता है। इसे ठीक से समझे बिना कोई भी प्रबन्धक संगठनात्मक प्रभावशीलता की ओर नहीं बढ़ सकता है। लॉरी कॅमिंग्स लिखते हैं कि ''जहाँ कहीं भी संगठन हैं संगठनात्मक व्यवहार को समझने की आवश्यकता होती है।''

संगठनात्मक व्यवहार अवधारणा (Organisational Behaviour: Concept)

संगठन व्यवहार संगठनों के अन्तर्गत मानवीय व्यवहार का अध्ययन है। संगठन व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा पारस्परिक कार्य व्यवहार का ही दूसरा नाम है। वस्तुतः संगठन में तीन प्रकार के मानवीय व्यवहार देखे जा सकते है–

(i) अन्तः वैयक्तिक व्यवहार (Interpersonal Behaviour)– इसमें कर्मचारियों का स्वयं का व्यवहार सम्मिलित है जो उनके व्यक्तित्व प्रवृत्तियों अवबोध मत–सम्मत अभिप्रेरणा भावना अपेक्षा तथा आन्तरिक भावनाओं के फलस्वरूप प्रकट होता है। व्यक्ति का स्वयं का व्यवहार संगठन के समूह व्यवहार एवं वातावरण से प्रभावित होता रहता है।

(ii) अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार (Interpersonal Behaviour) – दो व्यक्तियों या समूह के मध्य होने वाली पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवहार को अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार कहा जाता है। इसमें दो समूहों के बीच विद्यमान व्यवहार को भी शामिल किया जाता है। यह व्यवहार समूह गतिशीलता अन्तर्समूह संघर्ष नेतृत्व सम्प्रेषण व्यवहारात्मक विश्लेषण आदि के रूप में प्रकट होता है।

(iii) संगठन व्यवहार (Organisational Behaviour) – इसमें संगठन की औपचारिक संरचनाओ तथा अनौपचारिक समूहो के व्यवहार को शामिल किया जाता 1९

संगठनात्मक व्यवहार में उपर्युक्त तीनो प्रकार के व्यवहार एवं उसके प्रभावों तथा संगठन के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण के प्रभावो का अवलोकन अध्ययन एवं नियन्त्रण शामिल किया जाता है

परिभाषाएँ (Definitions)

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई संगठनात्मक व्यवहार की कुछ परिभाषायें निम्न प्रकार हैं–

जॉन न्यूस्ट्रॉम एवं कीथ डेविस (John Newstrom and Keith Davis) के अनुसार ''संगठनात्मक व्यवहार संगठन में व्यक्ति मानव एवं समूह के रूप में कैसे कार्य करते हैं– के सम्बन्ध में अध्ययन एवं ज्ञान की प्रयुक्ति है। यह ऐसे तरीकों के निर्धारण का प्रयास करता है जिससे व्यक्ति अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें।''

फ्रेड लुथांस (Fred Luthans) के शब्दों में ''संगठनात्मक व्यवहार संगठनों में मानवीय व्यवहार की समझ पूर्वानुमान एवं नियन्त्रण से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है।''

स्टीफेन पी. रोबिन्स (Stephen P. Robbins) के शब्दों में ''संगठनात्मक व्यवहार वह अध्ययन क्षेत्र है जो संगठनों में मानवीय व्यवहार पर पडने वाले व्यक्तियों समूहों तथा संरचना के प्रभावों की खोज करता है ताकि ऐसे ज्ञान से संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि की जा सके।''

चंग एवं मैगिनसन (Chung and Megginson) के अनुसार ''संगठनात्मक व्यवहार संगठनात्मक घटकों तथा मानवीय व्यवहार संगठन निष्पादन पर उनके प्रभावों का अध्ययन है। ऐसा अध्ययन कई व्यवहारात्मक एवं सामाजिक विज्ञानों से लाभान्वित होता है।''

रेन्डोल्फ बॉबिट (Randolf Bobbit) के अनुसार ष्संगठनात्मक व्यवहार से तात्पर्य संगठनों में व्यक्तियों व समूहों के व्यवहार तथा स्वयं संगठनों के व्यवहार के अध्ययन से है क्योंकि वे वांछित परिणामों की प्राप्ति के लिए क्रिया एवं अन्तर्क्रिया करते हैं।

जॉय केली (Joe Kelly) के शब्दों में ''संगठनात्मक व्यवहार संगठनों की प्रकृति का व्यवस्थित अध्ययन हैय अर्थात् संगठन कैसे प्रारम्भ होते बढते एवं विकसित होते हैं तथा वे व्यक्तिगत सदस्यों संघटक समूहों अन्य संगठनों तथा वृहत संस्थानों को कैसे प्रभावित करते हैं।''

डरबिन (Durbin) के अनुसार ''संगठनात्मक व्यवहार का अध्ययन उस संगठन के लोगों के व्यवहार को समझने का व्यवस्थित प्रयास है जिसके वे अभिन्न अंग हैं।''

संगठनात्मक व्यवहार के प्रमुख तत्व (Key Elements in Organisational Behaviour)

संगठनात्मक व्यवहार पर ढाँचा पाँच तत्वों से मिलकर बनता है। जब व्यक्ति किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए संगठन में साथ मिलकर कार्य करते हैं तो किसी एक संरचना की जरूरत होती है। व्यक्तियों को कार्य निष्पादन के लिए प्रौद्योगिकी की भी जरूरत होती है। व्यक्ति समूह सम्बन्धों से बँधे होते हैं तथा वातावरण से भी प्रभावित होते हैं एवं वातावरण को भी प्रभावित करते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार है–

1. व्यक्ति (Individuals) – व्यक्ति ही संगठन की आन्तरिक सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं। व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठनों का निर्माण होता है। व्यक्ति कौशल अवबोध प्रेरणा सीखने की योग्यता आदि की दृष्टि से भेद रखते हैं। यही

कारण है कि उनका व्यवहार एवं निष्पादन गहन रूप से प्रभावित होता है। व्यक्ति जीवित विचारशील एवं भावपूर्ण प्राणी हैं जो संगठन की रचना करते हैं।

2. समूह (Group) – संगठनात्मक व्यवहार का दूसार तत्व समूह तथा समूह प्रक्रियाएँ हैं। समूहों का निर्माण व्यक्तियों से होता है तथा समूह छोटे तथा बडे हो सकते हैं। समूह गतिशील हैं। ये बनते परिवर्तित होते तथा मिटते रहते हैं। समूह प्रक्रियायें सम्प्रेषण निर्णय शक्ति एवं नेतृत्व के माध्यम से संचालित की जाती हैं। समूह अनौपचारिक भी होते हैं तथा ये संगठनात्मक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

3. प्रकार्य एवं प्रौद्योगिकी (Tasks and Technology) – व्यक्ति कार्य एवं प्रौद्योगिकी तीनों गहन रूप से जुड़े हैं। प्रबन्धकों को इस बात का ध्यान रखना होता है कि व्यक्तियों की कार्य स्थल की प्रौद्योगिकी एवं स्वयं के कार्य के प्रति प्रतिक्रिया क्या है। कार्य सम्बन्धों पर भौतिक व आर्थिक संसाधनों कार्य की तकनीक उपकरण कार्य पद्धति आदि का गहन प्रभाव पडता है। लॉजी व्यक्ति के कार्य में सहायक होती है किन्तु जटिल टेक्नोलॉजी कार्य निष्पादन की भौतिक एवं मानसिक लागत में वृद्धि करती है।

4. संगठन डिजाइन (Organisation Design) – संगठन डिजाइन कार्य सम्बन्धों को परिभाषित करती है। यह व्यक्तियों के मध्य दायित्वों व अधिकारों के वितरण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करती है। संगठन संरचना जितनी अधिक प्रभावी होगी कर्मचारियों के व्यवहार एवं निष्पादन को उतने ही अच्छे ढंग से समन्वित एवं नियन्त्रित किया जा सकता है।

संगठनात्मक व्यवहार के लक्षण एवं प्रकृति(CharacteristicsAnd Nature of Organisational Behaviour)

संगठनात्मक व्यवहार एक नया विषय है। इसकी प्रकृति को निम्न लक्षणों के आधार पर समझा जा सकता है–

1. ज्ञान का नवीन क्षेत्र (New Field of Study)– संगठनात्मक व्यवहार को एक विधा (Discipline) नहीं वरन् ज्ञान का एक नवीन क्षेत्र माना जाता है। अभी यह पूर्ण एवं मान्य विज्ञान नहीं है। इसके ज्ञान का अभी व्यवस्थीकरण नहीं हुआ है तथा इसके सिद्धान्त एवं अवधारणाएँ दूसरे विषयों से ग्रहण की जा रही है। इसके सिद्धान्त अभी परिभाषित नहीं किये जा सके हैं तथा इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट नहीं है। प्रो. रॉबिन्स (Robbins) के अनुसार ''संगठनात्मक व्यवहार अध्ययन का एक क्षेत्र है। यह सर्वमान्य ज्ञानयुक्त निपुणता का विशिष्ट क्षेत्र है।''

2. अध्ययन की विषय वस्तु (Subject matter of Study) – संगठनात्मक व्यवहार में कुछ विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इनमें सम्मिलित पहलू ये हैं– व्यक्ति, व्यक्तियों का समूह, संगठन, संरचना, तकनीक, वातावरण।

3. अन्तर्विषयक दृष्टिकोण (Inter-disciplinaryApproach) – संगठनात्मक व्यवहार के अर्न्तगत मनोविज्ञान समाजशास्त्र मानवशास्त्र आदि अनेक विषयों के ज्ञान का प्रयोग होता

है। संगठनात्मक व्यवहार इन विषयों के तर्कसंगत विचारों अवधारणाओं एवं तकनीकों का एकत्रीकरण करके मानवीय व्यवहार को समझने पर बल देता है।

4. व्यावहारिक विज्ञान (Applied Science) – संगठनात्मक व्यवहार एक प्रयुक्त एवं प्रायोगिक विज्ञान है। इसके क्षेत्र में किये जाने वाले अनुसंधान अध्ययनों तथा अवधारणात्मक विकासों से इसका वैज्ञानिक आधार मजबूत होता जा रहा है। कर्मचारी व्यक्तित्व अभिवृत्तियों मूल्य प्रेरणा सन्तुष्टि अवबोध तथा मानवीय व्यवहार के अन्य पहलुओं के सम्बन्ध में निरन्तर शोध किये जा रहे हैं। न्यूस्ट्रोम एवं कीथ डेविस के अनुसार ''यह एक व्यावहारिक विज्ञान भी हैं क्योंकि एक संगठन के प्रभावी व्यवहारों का प्रयोग अन्य संगठनों में भी होता रहता है।''

5. प्रबन्ध का व्यवहारात्मक दृष्टिकोण (BehaviouralApproach to Management)–यह दृष्टिकोण संगठनात्मक व्यवहार मानवीय पक्ष से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता है लेकिन यह सम्पूर्ण प्रबन्ध नहीं (It is not the whole of management)। दूसरे शब्दों में संगठनात्मक व्यवहार का विकास प्रबन्ध को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं हुआ बल्कि तकनीकी पहलुओं के विरुद्ध संगठनात्मक व्यवहार प्रबन्ध के मानवीय भावात्मक मनोवैज्ञानिक आयामों से सम्बन्धित है। लॉरी कैगिंग्स के शब्दों में 'संगठनात्मक व्यवहारविशिष्ट रूप से मानवीय शैली (IHumanistic tone) रखता है, जो स्व–विकास,व्यक्तिगत प्रगति तथा आत्म संतृप्ति के सम्बन्ध में प्रकट होती है।'

6. वातावरण से सम्बद्ध (Links with Environment)– संगठनात्मक व्यवहार संगठन के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण का अध्ययन करते हुए मानवीय व्यवहार को समझने पर बल देता है। व्यक्ति के निजी एवं समूह व्यवहार पर संगठन के परिवेश नीतियों पारस्परिक विचारों के साथ–साथ बाह्य दशाओं एवं मूल्यों का भी प्रभाव पडता है। दूसरे शब्दों में संगठन का वातावरण ही संगठन के कर्मचारियों व समूहों के व्यवहार को निर्धारित करता है। यह विषय वातावरणीय निशचयवाद (Environmental determinism) को महत्व देता है।

संगठनात्मक व्यवहार का क्षेत्र (Scope of Organisational Behaviour)

संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र की सीमाएँ अभी तक निश्चित नहीं हुई है तथा विद्वान भी इस सम्बन्ध से एकमत नहीं है। कुछ विभिन्न विद्वानों ने संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र में सम्मिलित विषयों एवं प्रकरणों पर निम्नांकित ढंग से प्रकाश डाला है–

प्रो. रॉबिन्स (Robbins) के अनुसार संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र में निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है–

(i) अभिप्रेरण एवं नेतृत्व व्यवहार

(ii) अधिकार सत्ता सम्प्रेषण एवं समूह प्रक्रिया

(iii) प्रवृत्ति विकास एवं अवबोधन

(iv) कार्य दबाव पारस्परिक मतभेद

(v) परिवर्तन प्रक्रिया एवं कार्य रचना।

प्रो. कीथ डेविस (Keith Davis) ने संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र में निम्नाकिंत विषयों को सम्मिलित किया है–

(i) संगठन विकास एवं प्रशिक्षण

(ii) संगठन में व्यक्तियों की भूमिका

(iii) समूह गतिशीलता

(iv) नेतृत्व सम्प्रेषण एवं पर्यवेक्षण

(v) कर्मचारी सहभागिता एवं श्रमसंघों की कार्यप्रणाली

(vi) परिवर्तनों का प्रबन्ध

(vii) कार्यकारी जीवन एवं रोजगार

(viii) दबाव परामर्श एवं अभिप्रेरण

फ्रेड लुथान्स (Fred Luthans) के अनुसार संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र में निम्नांकित व्यवहारात्मक एवं प्रवन्धकीय पहलुओं का अध्ययन विश्लेषण एवं परीक्षण किया जाता है –

(i) व्यक्तित्व एवं अवबोधन

(ii) प्रवृत्तियाँ एवं कार्य सन्तुष्टि

(iii) संगठनात्मक संस्कृति

(iv) व्यवहार संशोधन

(v) अधिकार सत्ता तथा राजनीति

(vi) अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार

(vii) ज्ञानार्जन

(viii) कार्य दबाव

(ix) अभिप्रेरण एवं सम्प्रेषण

(x) निर्णयन एवं नियन्त्रण

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन विद्वानों के द्वारा बतलाये गये विषयों में काफी समानता है, यद्यपि इन क्षेत्रों का विवरण अलग–अलग ढंग से किया गया है।

संगठनात्मक व्यवहार की प्रक्रिया (The Basic Process of Organisational Behaviour) अथवासंगठनात्मक व्यवहार मॉडल(Organisational Behaviour Model)

संगठनात्मक व्यवहार संगठन में व्यक्तियों के व्यवहार अभिवृत्तियों तथा निष्पादन को प्रभावशाली बनाने की प्रक्रिया है। यह विशिष्ट रूप से औपचारिक संगठन तथा अनौपचारिक समूहों के प्रभावों कर्मचारियों की संरचना संगठन एवं कार्य वातावरण पर कर्मचारियों के प्रभावों से सम्बन्धित है।

संगठनात्मक व्यवहार की प्रक्रिया एवं मॉडल को निम्न चरणों में बाँटकर समझा जा सकता है।–

1. व्यवहार विश्लेषण

2. व्यवहार की समझ

3. व्यवहार की भविष्यवाणी

4. व्यवहार का नियन्त्रण

5. संगठनात्मक प्रभावशीलता

6. प्रतिपुष्टि।

1. व्यवहार का विश्लेषण (BehaviourAnalysis) – संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र में प्रबन्ध का प्रथम महत्वपूर्ण कार्य कर्मचारियों के कार्य व्यवहार का विश्लेषण करना है। इस हेतु प्रबन्धक तीन स्तरों पर व्यवहार की जाँच करता है। वह वैयक्तिक व्यवहार के विभिन्न पहलुओं जैसे व्यक्तित्व अवबोध सीखना अभिप्रेरण मनोबल कार्य सन्तुष्टि नैराश्य तनाव व दबाव आदि का विश्लेषण करता है। प्रबन्धक समूह व्यवहार से जुड़े अनेक पहलुओं जैसे समूह गतिशीलता नेतृत्व सत्ता व राजनीति के प्रारूप वर्ग संघर्ष सम्प्रेषण समूह प्रक्रियाएँ व प्रबन्धक वैयक्तिक एवं समूह व्यवहार के पारस्परिक प्रभावों का भी अवलोकन करता है। इसके अतिरिक्त प्रबन्धक को अपने संगठन की संस्कृति मूल्य कार्य नीतियों तथा संगठन में होने वाले परिवर्तनों व विकास को भी ध्यान में रखना होता हैं। इस प्रकार सर्वप्रथम प्रबन्धक को वैयक्तिक एवं समूह व्यवहारों तथा संगठन संस्कृति एवं मूल्यों का व्यापक अध्ययन करना होता है।

2. व्यवहार की समझ एवं ज्ञान (Understanding of Behaviour)– संगठनात्मक व्यवहार के अन्तर्गत प्रबन्धक का दूसरा कार्य कर्मचारियों के व्यवहार के प्रति सही समझ उत्पन्न करना है कि ताकि उनके कार्यो व दायित्वों के बारे में सही निर्णय लिये जा सकें। इसके लिए प्रबन्धक यह देखता है कि (i) व्यवहार के कौन से घटक महत्वपूर्ण है; (ii) वे किस सीमा तक अन्तर्सम्बन्धित हैं। इन प्रश्नों का विश्लेषण करके कर्मचारियों के वैयक्तिक एवं समूह व्यवहार एवं उनके प्रभावों के बारे में सही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

3. व्यवहार की भविष्यवाणी (Prediction of Behaviour) – प्रबन्धक कर्मचारियों के व्यवहार को समझ लेने के बाद उनके व्यवहार प्रारूपों के सम्बन्ध में पूर्वानुमान एवं

भविष्यवाणी करते है। वे व्यवहार घटकों में कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध स्थापित करते है तथा उसके आधार पर कर्मचारियों की कार्य निष्ठा तत्परता दायित्व भावना अथवा उनकी कार्य के प्रति उदासीनता एवं प्रतिक्रियाशील होने का पूर्वानुमान करते हैं।

4. व्यवहार का नियन्त्रण (Control of Behaviour)– प्रबन्धक कर्मचारियों के व्यवहार में विचलन एवं अनियमितता को दूर करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करके अवांछित व्यवहार को नियन्त्रित कर सकते है। प्रबन्धकों को कर्मचारियों के गलत व्यवहार पर नियन्त्रण रखने के लिए तीन बातों पर विचार करना चाहिए– (अ) अवांछनीय व्यवहार को रोकने के लिए क्या हल सम्भव है? (ब) कौन से व्यवहार घटकों को प्रभावित किया जा सकता है? (स) घटक कैसे प्रभावित किये जा सकते है?

5. संगठनात्मक प्रभावशीलता (Organisational Effectiveness) – संगठनात्मक व्यवहार का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारियों के कार्य व्यवहार एवं कार्य सम्बन्धों में सुधार संगठन को प्रभावशील बनाना है। प्रबन्धक व्यक्तियों के व्यवहार का विश्लेषण करके यह जान सकते हैं कि उनके द्वारा कौन सी समस्याएँ खडी की जाती हैं? उनके व्यवहार में कौन सी विसंगतियाँ हैं? कार्य के प्रति उनकी अरूचि उदासीनंता तथा असन्तुष्टि के क्या कारण हैं? समूह तथा संगठन के साथ उनकी कितनी संगति हैं? आदि। प्रबन्धक इनके हल प्रस्तुत करके संगठन को प्रभावी बना सकते हैं। संगठनात्मक व्यवहार की अंतिम चरण प्रतिपुष्टि है। इसके अन्तर्गत लक्ष्य एवं परिणाम प्राप्ति विचलन विसंगति आदि से सम्बन्धित सूचनाओंका उपयोग प्राथमिक चरण में किया जाता है। फलतः मानव व्यवहार में सुधार लाने में सहायता मिलती है। प्रतिपुष्टि से प्रबन्धकीय निर्णयों को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

संगठनात्मक व्यवहार के उद्देश्य/महत्व (Goals and Significance of Organisational Behaviour)अथवासंगठनात्मक व्यवहार का अध्ययन आवश्यक क्यों है?(Why Study Organisational Behaviour?)

किसी भी संगठन के कार्यो का निष्पादन अथवा लक्ष्यों की पूर्ति व्यक्तियों के माध्यम से ही होती है। व्यक्ति अकेले अथवा सामूहिक रूप से प्रौद्योगिकी की सहायता से लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करते हैं। अतः प्रबन्ध के क्षेत्र में संगठनात्मक व्यवहार का प्रबन्ध सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कार्य स्थल पर व्यक्तियों का व्यवहार अनेक घटकों जैसे उनकी प्रेरणाएँ सन्तुष्टि मनोबल अभिवृत्तियाँ मानवीय सम्बन्ध तनाव कार्य दबाव उत्साह आदि से प्रभावित होता है। अतः संगठन में मानवीय व्यवहार के प्रारूपों को समझना उनका विश्लेषण करना तथा उनका नियन्त्रण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। न्यूस्ट्रॉम एवं डेविस के शब्दों में जहाँ कहीं संगठन हैं वहाँ मानव व्यवहार को परिभाषित करने समझने पूर्वानुमान करने तथा उसका श्रेष्ठ प्रबन्ध करने की आवश्यकता होती है। संगठनात्मक व्यवहार के उद्देश्य अथवा इसके अध्ययन निम्न कारणों से होती है–

1. मानव व्यवहार को समझने के लिए (Understanding human behaviour)–संगठनात्मक व्यवहार मानव व्यवहार के विभिन्न स्तरों का विश्लेषण करने का उपकरण है यह प्रबन्धकों के लिए व्यक्तियों के व्यवहार को समझने में सहायक होता है। इसके द्वारा अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार की जटिलता को समझा जा सकता है। इससे व्यक्ति

की कार्य दृष्टिकोण की मनःस्थिति रूझान कार्य सन्तुष्टि प्रतिक्रिया तत्परता कार्य निष्ठा कार्य के प्रति दृष्टिकोण आदि को समझा जा सकता है। इसके ज्ञान से मानवीय सम्बन्धों में सुधार लाया जा सकता है। मानव की अनेक इच्छाएँ भावनाएँ आवश्यकताएँ एव अपेक्षाएँ होती है। वह अनेक प्रकार की योग्यताएँ क्षमताएँ ज्ञान एवं चातुर्य भी रखता है। संगठनात्मक व्यवहार के द्वारा सम्पूर्ण मानव को समझने में सहायता मिलती है। इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के विभिन्न गुणों लक्षणों भावनाओं इच्छाओं कमियों व अपेक्षाओं का अध्ययन किया जा सकता हैं संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन से मानव व्यवहार को निम्नाकिंत स्तरों पर समझा जा सकता है–

(i) व्यक्तिगत स्तर पर संगठनात्मक व्यवहार को व्यक्तिगत स्तर पर समझा जा सकता है इसके अन्तर्गत व्यक्ति के विशिष्ट व्यवहार के कारणों को ज्ञात किया जा सकता है। यहाँ उसके सामाजिक व्यक्ति के रूप में किये जाने वाले व्यवहार को समझा जाता है।

(ii) अन्तर्वैयक्तिक स्तर पर संगठनात्मक व्यवहार का व्यक्तियों के आपसी स्तर पर भी अध्ययन किया जा सकता है। उहाहरण के लिए अधिकारी एवं अधीनस्थ के बीच के सम्बन्धों को समझा एवं उनमें सुधार किया जा सकता है।

(iii) समूह स्तर पर जब व्यवहार समूह में होता है तो यह भिन्न हो जाता है। व्यक्तियों का व्यवहार समूह दबाव से भी प्रभावित होता है। समूह व्यवहार संगठनात्मक लक्ष्यों तरीकों व कार्यप्रणाली पर भी प्रभाव डालता है। इसलिए संगठनात्मक व्यवहार में व्यक्तियों का समूह स्तर पर भी अध्ययन किया जाता है।

(iv) अन्तर समूह स्तर पर संगठन में अनेक समूह कार्य करते है। समूहों के बीच मतभेद संघर्ष प्रतिस्पर्धा सहयोग आदि के सम्बन्ध बनते रहते है। उनके आपसी सम्बन्धो का प्रभाव सम्पूर्ण संगठन की कार्यप्रणाली पर पड़ता है। अतः प्रबन्धकों के लिए विभिन्न समूहों के बीच आपसी सम्बन्ध का अध्ययन करना भी आवश्यक होता है।

2. व्यवहार की गतिशीलता को समझना (To Understand the Dynamics of Behaviour) – संगठनात्मक व्यवहार का एक लक्ष्य व्यक्तियों के व्यवहार के पीछे निहित कारणों का पता लगाना होता है। जब तक कर्मचारियों का व्यवहार एक रहस्य या पहेली बना होता है उनसे काम लेना तथा उन्हें संतुष्ट करना मुश्किल होता है। अतः प्रबन्धकों को यह जान लेना होता है कि व्यक्ति विभिन्न दशाओं के कैसे व्यवहार करते है।

3. समूह गतिकी का ज्ञान करना (To Understand Group Dynamics) – संगठनात्मक व्यवहार के द्वारा छोटे समूहों में सम्बन्धों की गतिशीलता और समूह प्रतिक्रियाओं को भी भली भांति समझा जा सकता है। इससे औपचारिक समूहों में नियम पालन औपचारिक बन्धनों का व्यवहार पर प्रभाव आदि के बारे में ज्ञान किया जा सकता हैं इसके अतिरिक्त अनौपचारिक समूहों के कार्य करने की पद्धति सम्प्रेषण प्रारूप नेतृत्व प्रभाव आदि के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

4. मानव व्यवहार का पूर्वानुमान करना (Predicating Human Behaviour) – संगठनात्मक व्यवहार के द्वारा कर्मचारियों के विचारों प्रवृत्तियों एवं मनोवृत्तियों का अध्ययन करके उनके व्यवहार का पूर्वानुमान किया जा सकता हैं। इससे प्रबन्धकों को कर्मचारियों के

अभिप्रेरण सम्प्रेषण प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में निर्णय लेने तथा कार्यक्रम बनाने में सुविधा होती है। संगठनात्मक व्यवहार के अन्तर्गत प्रबन्धक यह भी पूर्वानुमान कर सकते हैं कि कौन से कर्मचारी कार्य के प्रति समर्पित एवं उत्पादक प्रकृति के हैं तथा कौन से कर्मचारी लापरवाह अनुत्तरदायी निष्क्रिया एवं कार्य में बाधा डालने वाले सिद्ध होंगे। इस प्रकार संगठनात्मक व्यवहार कर्मचारी के अवांछित व्यवहार को रोकने में सहायक होता है।

5. व्यवहार को नियन्त्रित एवं निर्देशित करना (Controlling and Directing Behaviour)– संगठनात्मक व्यवहार से कर्मचारियों के व्यवहार को न केवल समझने व पूर्वानुमान करने में सहायता मिलती है वरन् उसको नियन्त्रित एवं निर्देशित करने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह प्रबन्धकों के निम्नलिखित कार्यक्षेत्रों में व्यवहार को निर्देशित करता है–

(क) संगठनात्मक व्यवहार द्वारा उन तरीकों का अध्ययन किया जाता है जिनसे सत्ता का सदुपयोग किया जा सके।

(ख) इससे संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों में कुशलतापूर्वक समन्वय किया जा सकता

(ग) नेतृत्व को प्रभावी बनाने की नई विधियों का विश्लेषण किया जा सकता है।

(घ) इससे संगठन में आपसी सहयोग एवं सूझबूझ बढाने वाली प्रभावकारी सम्प्रेषण व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

(ङ) संगठनात्मक वातावरण में सुधार किया जा सकता है।

संगठनात्मक व्यवहार की सीमाएँ एवं दुर्बलताएँ(LimitationsAnd Shortcomings of Organisational Behaviour)

यद्यपि संगठनात्मक व्यवहार व्यापक रूप में स्वीकृत एक विषय एवं दृष्टिकोण बन गया है किन्तु फिर भी इसकी कुछ कमियाँ हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं–

1. सिद्धान्तों पर बल व्यवहार पर नहीं– आलोचको का कथन है कि संगठनात्मक व्यवहार अधिकांशतः एक सैद्धान्तिक विषय है यह व्यवहार में सुधार लाने पर अधिक बल नहीं देता है। के अश्वथप्पा का कथन है कि जो व्यक्ति व्यवहारवादी विषयों का अच्छा ज्ञान एवं तैयारी रखते हैं वे स्वयं के पारिवारिक जीवन में पूर्णतः असफल सिद्ध हुए है।

2. औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार नहीं –संगठनात्मक व्यवहार विषय संस्था में औद्योगिक विवादों झगडों व उत्पादन अवरोधक गतिविधियों को रोकने में सफल नहीं हुआ है संगठनात्मक व्यवहार की प्रक्रियाओं को लागू करने के बावजूद भी संस्थाओं में हडतालों तालाबन्दी तोडफोड घेराव जैसी घटनाओं में कमी नहीं आई है। प्रबन्ध एवं श्रमिक के बीच सम्बन्धों में सम रसता उत्पन्न नहीं हुई है।

3. केवल वर्णनात्मक निर्देशात्मक नहीं– कई आलोचकों का यह मत है कि संगठनात्मक व्यवहार केवल एक विवरणात्मक विषय है। यह समस्या समाधान के लिए कोई हल आदेश या निर्देश प्रस्तुत नहीं करता है। यह सुझावात्मक नहीं है। यह समस्याओं के

केवल प्रमाणीकरण तक ही सीमित है। यह उनकों दूर करने के लिए कोई सुझाव प्रस्तुत नहीं करता। यह अवांछित व्यवहार का वर्णन कर सकता है उसकी पुनरावृत्ति को नहीं रोक सकता।

4. प्रबन्धकों की सनक – कुछ लोगों का मत है कि संगठनात्मक व्यवहार आधुनिक प्रबन्धकों की सनक का परिणाम है। यह प्रबन्ध में मात्र नये परिवर्तन करने पर बल देता है किन्तु इससे कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों की प्रवृत्तियों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। इनके व्यवहार में बदलाव लाने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है।

इकाई–4

अभिप्रेरण

अभिप्रेरण क्या है?

तुथांस लिखते हैं कि ''वास्तव में आज सब व्यक्तियों, जन सामान्य एक विद्वान, की अभिप्रेरक के सम्बन्ध में अपनी–अपनी परिभाषायें हैं।'' अतः अभिप्रेरण के विचार को ठीक से समझ लेना यक है।

अभिप्रेरण के साथ कई कई शब्द जैसे– 'इच्छाएं''आवश्यकताएं''चाह' 'उद्देश्य' 'लक्ष्य' 'मांग या प्रभाव' 'चालक''अभिप्रेरक' 'प्रोत्साहन' आदि से जुड़े हुए हैं। कुछ शब्दों का ठीक–ठीक अर्थ जान लेने पर ही अभिप्रेरण के आशय को समझा जा सकता है।

आवश्यकतायें Needs आवश्यकता किसी अभाव या कमीश को कहते हैं। जब कोई शारीरिक या मानसिक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तो व्यक्ति को आवश्यकता आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में किसी चीज से वंचित होना ही आवश्यकता को जन्म देना है। भोजन, पानी, मैत्री हमारी आवश्यकताएं है।

चालक अथवा प्रेरणा – चालक एवं अभिप्रेरक समानार्थी है। इन्हें उत्प्रेरक या प्रेरक भी कहते हैं। प्रेरक से तात्पर्य 'दिशासूचक अभाव' से है। चालक या प्रेरक 'कार्य–अभिमुखी' होते हैं। जो लक्ष्य–पूर्ति के लिए एक शक्तिशाली धक्का या प्रहार प्रदान करते हैं। चालक या प्रेरक अभिप्रेरक प्रक्रिया के मुख्य केन्द्र बिन्दु हैं। ये आवश्यकताओं की तृप्ति की दिशा को बताते हैं। भूंख, प्यास और सम्बन्ध हमारी भोजन, पानी, और मित्र की आवश्यकताओं के प्रेरक हैं।

प्रेरक को आवश्यकता – सक्रियता भी कहा जा सकता है। प्रेरक ही बताते हैं कि व्यक्ति कोई विशिष्ट व्यवहार क्यों कर रहा है। ये व्यक्ति के भीतर वे आवेग मनोवेग या प्रेरणायें हैं जो व्यक्ति को कोई किया करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं बेरेलसन तथा स्टेनर के अनुसार ''प्रेरणा व आन्तरिक स्थिति है जो व्यवहार को लक्ष्यों की ओर ऊर्जस्वित, सक्रिय, निर्देशित अथवा प्रवाहित करती है।'' यह 'आन्तरिक उद्दीपक' है, जो सचेतन व्यवहार को आवश्यकता या लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रेरित करता है।

फिलमोर एवं राइट्समैन ने प्रेरक को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''प्रेरक एक अशान्ति की व्यवस्था, एक अभाव, एक ललक ल्मद, एक तनाव है। जब एक बार व्यक्ति प्रेरक की पकड़ में आ जाता है तो वह कुछ करता है। प्रायः अधिकतर वह अपनी अशान्ति को कम करने, अभाव को दूर करने, ललक को घटाने तथा तनाम को शिथिल करने का प्रयास करता है।''

प्रोत्साहन – प्रोत्साहन से तात्पर्य श्पुरस्कारश त्मूंतक से है। यह 'बाह्य उद्दीपक'External Stimulus है जो व्यक्ति को कोई कार्य करने अथवा कुछ प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

लक्ष्य लक्ष्य कोई भी वह चीज है जो आवश्यकता को संतुष्ट करती है। अथवा उत्प्रेरणा को कम करती है। लक्ष्य पूर्ति के पश्चात् शारीरिक अथाव मानसिक संतुलन को वापस प्राप्त किया जा सकता है तथा प्रेरणा कम अथवा समाप्त हो जाती है। इच्छायें भी हमारे विशिष्ट सचेत लक्ष्य हैं।

'अभिप्रेरण' शब्द लेटिन शब्द केMovere से बना है, जिसका तात्पर्य संचालित करना 'tomove' है। वास्तव में, अभिप्रेरण का अर्थ आवश्यकताओं, प्रेरकों चालकों, तथा लक्ष्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध में निहित है।

इससे स्पष्ट है कि आवश्यकतायें लक्ष्यों की पूर्ति के लिए चालकों अथवा प्रेरकों को क्रियाशील कर देती है।

अभिप्रेरण की इस श्रृंखला को एक दूसरे ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है। आवश्यकताओं के उत्पन्न होने से व्यक्ति कुछ अभाव या रिक्तता अनुभव करता है। फलस्वरूप उसके भीतर तनाव, व्यग्रता एवं बेचौनी पैदा हो जाती है जो उसके व्यवहार को उत्प्रेरित करती है. तथा व्यक्ति लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई किया अर्थात् व्यवहार करता है ताकि सन्तुष्टि प्राप्त की सके तथा आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

प्रणालीगत अर्थ में, अभिप्रेरण तीन अन्तर्कियाशील एवं अन्तर्निर्भर तत्वों आवश्यकतायें, प्रेरक तथा लक्ष्य–का जोड़ है। यह स्वयं को तथा दूसरों को वैयक्तिक संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संचालित एवं क्रियाशील करने की प्रक्रिया है। शब्दों में, इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यवाही करने हेतु व्यक्ति को प्रभावित कर अथवा प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया को अभिप्रेरण कहते हैं।

अभिप्रेरण की परिभाषायें

अभिप्रेरण को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। अभिप्रेरण कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्न प्रकार है–

स्टेनले वेन्से (Stanley Vance) के अनुसार ''कोई भी भावना या आवश्यकता व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार प्रभावित करती है कि वह कार्य करने के लिए प्रेरित हो जो अभिप्रेरण कहलाती है।''

बीच (Beach) के शब्दों में, ''अभिप्रेरण को एक लक्ष्य या पुरस्कार प्राप्त करने को शक्ति के उपयोग की इच्छा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

शार्टल (Shartle) के अनुसार, ''किसी निश्चित दिशा की ओर जाने या किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निश्चित प्रेरणा या तनाव ही अभिप्रेरण है।''

मैक्फारलैण्ड (McFarland) के मत में, ''अभिप्रेरण की धारणा मूलतरू मनोवैज्ञानिक है। इसका सम्बन्ध किसी कर्मचारी अथवा अधीनस्थ में कार्य कर रही उन शक्ति से है, जो उसे किसी कार्य को विधिवत् करने अथवा न करने के लिए प्रेरित करती हैं।''

स्कॉट (William G Scot) के मतानुसार, ''अभिप्रेरणा लोगों को इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित करने की क्रिया है।''

अभिप्रेरणा की प्रकृति

अभिप्रेरण की विभिन्न परिभाषाओं से कई लक्षण प्रकट होते हैं जो इसकी प्रकृति को स्पष्ट करते हैं। अभिप्रेरण की प्रकृति को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है–

1. एक प्रक्रियाA Process– अभिप्रेरण एक प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित अथवा प्रोत्साहित करती है। यह मानवीय व्यवहारों को जाग्रत करने।तवनेपदह, बनाये रखने ैनेजंपदपदह ताकि वांछित दिशाओं में अग्रसर करने की प्रक्रिया है।

2. मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित–समस्त मानवीय व्यवहार मनुष्य की आवश्यकताओं से संचालित होते हैं। मनुष्य एक इच्छा– प्रधान प्राणी है। अपनी शारीरिक, मानसिक व सामाजिक इच्छाओं की संन्तुष्टि से प्रेरित होकर ही वह अनेक कार्यों को प्रारम्भ करता है। आवश्यकताएं व्यक्ति के भीतर रिक्तता, भाव, संघर्ष, अभाव को जन्म देकर उसे कार्यवाही के लिए प्रवृत्त करती है। मास्लो, हर्जबर्ग, एल्डरफर, मैक्लीलैंड आदि के अभिप्रेरणा सिद्धान्त मानवीय आवश्यकताओं पर ही आधारित है।

3. मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया– अभिप्रेरण मूलतः एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है इसका सम्बन्ध उन आवश्यकताओं से है जो मनुष्य के चेतन अथवा अर्द्ध– चेतन मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। मनो वैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति पर व्यवहार उसके मन एवं उसमें होने वाली अनुभूतियों से निर्मित होता है।

4. लक्ष्य–प्रधान व्यवहार– अभिप्रेरण व्यक्ति को निश्चित लक्ष्यों, परिणामों, अथवा निष्पादन के लिए अभिप्रेरित करता है। अभिप्रेरण एक लक्ष्य–प्रधान प्रक्रिया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वैक्तिक लक्ष्यों की सन्तुष्टि के लिए कार्य करता है। किन्तु प्रबन्धक व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक लक्ष्यों को एकीकृत करके कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रेरित करता है।

5. संतुष्टि से भिन्न –अभिप्रेरण आवश्यकता अथवा लक्ष्य की पूर्ति से सम्बन्धित प्रक्रिया है श्सन्तुष्टिश किसी आवश्यकता की पूर्ति से मिलने वाला संतोष है। कार्य सन्तुष्टि एक परिणाम है। पोर्टर एवं लॉलर ने अपने अभिप्रेरण सिद्धान्त में कार्य सन्तुष्टि को अभिप्रेरण प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण घटक माना है जो आन्तरिक व बाह्य पुरस्कारों के साथ–साथ, व्यक्ति को कितने पुरस्कार मिलने की आशा है। पर भी निर्भर करता है। अभिप्रेरण व कार्य–संन्तुष्टि की भिन्नता के कारण यह सम्भव है कि कार्य–संन्तुष्टि के उच्चतम होने पर पश्चात् भी कार्य के लिए अभिप्रेरण का स्तर निम्न हो सकता है।

6. निष्पादन से सम्बन्धित– अभिप्रेरण का निष्पादन से गहरा सम्बन्ध है। अभिप्रेरण की प्रक्रिया विचारधाराओं के अनुसार निष्पादन भी अभिप्रेरण प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण घटक है। जो व्यक्ति की योग्यता, प्रयासों व भूमिका–बोध पर निर्भर करता है। निष्पादन के आधार पर ही पुरस्कार भी दिये जाते हैं। किन्तु जहां पुरस्कार प्रदान करने में निष्पादन के आधार पर

ही पुरस्कार भी दिये जाते हैं। किन्तु जहां पुरस्कार प्रदान करने में निष्पादन स्तर पर ध्यान नहीं दिया जाता है। वहां अभिप्रेरण प्रक्रिया का महत्व कम हो जाता है।

7. मनोबल से सम्बन्धित– मनोबल एवं अभिप्रेरण में अन्तर है। मनोबल संगठन में इसके प्रबन्धकों के व्यक्तित्व, योग्यता एवं प्रयासों से उत्पन्न होने वाली दशा है। यह कर्मचारियों की अभिवृत्ति की दशा (State ofAttitude) को प्रकट करता है। अभिप्रेरण एक प्रक्रिया व कारण Cause है, जबकि मनोबल इससे उत्पन्न होने वाला प्रभाव Effect है। अभिप्रेरण व्यक्तिगत होता है, जबकि मनोबल समूह विचार है।

8. अभिप्रेरण व टीम–भावना, एक नहीं है – कई बार अभिप्रेरण व टीम भावना को एक मान लिया जाता है। टीम भावना व्यक्तियों द्वारा समूह में प्रभावशाली ढंग से कार्य करने की दशा है। जबकि अभिप्रेरण व्यक्ति के भीतर की वह इच्छा है जो उसे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है। टीम भावना के अभाव में भी व्यक्ति प्रयासो एवं सन्तुष्टि के लिए कार्य कर सकते हैं।

9. विभिन्न प्रकार अभिप्रेरण कई प्रकार का होता है, जैसे– धनात्मक एवं ऋणात्मक, वित्तीय एवं अवित्तीय, व्यक्तिगत एवं सामूहिक आदि। इन विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरण की तकनीकें एवं प्रक्रिया भी भिन्न–भिन्न होती है। संस्था के सदस्यों की प्रकृति, कार्य, लक्ष्य, व संगठनात्मक, परिस्थितियों पर विचार करते हुए विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरण का प्रयोग किया जा सकता है।

अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व

मानवीय व्यवहार प्रबन्धकों के लिए सदा से दुविधापूर्ण एवं रहस्यमय रहा है। व्यक्ति की इच्छाओं, भावनाओं व प्रेरणाओं को समझने के लिए प्रबन्ध विचारकों ने अनेक सिद्धान्त खोजे हैं व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किये हैं किन्तु फिर भी व्यक्ति के व्यवहार, ऊर्जा स्त्रोतों को इच्छाशक्ति व उत्प्रेरणा को समझ पाना चुनौतीयुक्त रहा है। मानवीय चेतना के समय रहस्यों को जानने का प्रयास सदियों से चल रहा है।

एक प्रबन्धक के लिए व्यक्ति केवल धन अर्जन के लिए कार्य करने वाला कर्मचारी नहीं वरन् अनेक संवेगों, उद्वेगों, भावनाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं व आवश्कताओं उत्प्रेरित प्राणी है। आज प्रत्येक संगठन में व्यक्ति से कार्य करवाना केवल भय पुरस्कार की विचारधारा द्वारा सम्भव नहीं है। अनेक इच्छाओं भावनाओं व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित करती है। टेम्पल बर्लिंग का कथन है कि "आप केवल व्यक्ति के हाथ को नियुक्त नहीं कर सकते हैं अर्थात् प्रबन्धक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को कार्य पर है केवल उसके हाथों को नहीं।" अतः व्यक्ति के सम्पूर्ण अस्तित्व ज्वजंस ठमपदह को बिना उससे अधिक कार्य ले पाने का विचार निरर्थक है। अभिप्रेरणा का सम्बन्ध कर्मचारी के व्यक्तित्व के विकास से है। अभिप्रेरण की आवश्यकता के सम्बन्ध में श्रेष्ठ कथनों में से कथन जनरल फूड कॉरपोरेशन के भूतपूर्व अध्यक्ष क्लेरेन्स फ्रान्सिस द्वारा दिया गया है। उनके अनुसार ष्आप किसी व्यक्ति का समय खरीद सकते हैं आप विषिश्ट स्थान पर किसी व्यक्ति की शारीरिक उपस्थिति खरीद सकते हैं, लेकिन आप व्यक्ति का उत्साह, पहलपन अथवा वफादारी नहीं खरीद सकते है।ष अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

1. संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत लक्ष्यों में एकता – व्यक्ति प्राथमिक रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के संगठन में कार्य करता है। प्रबन्धक कर्मचारियों की वैयक्तिक आवश्यकताओं को पूरा ही संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। अतः प्रबन्धक वैयक्तिक प्रेरकों लक्ष्यों, इच्छाओं व महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करके ही संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

2. निष्पादन योग वातावरण का सृजन – संगठन में कार्य करने की इच्छा आदेशों को पालना, लक्ष्य–प्राप्ति की भावना कार्यक्षमताओं की वृद्धि आदि प्रेरणात्मक वातावरण में ही सम्भव है। कार्यों के कुशल निष्पादन के लिए अभिप्रेरण द्वारा ही उचित वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

3. कार्य सन्तुष्टि में वृद्धि –अभिप्रेरण की प्रक्रिया कार्य–स्थल पर व्यक्तियों की विभिन्न, शारीरिक, मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर जोर देती है। विभिन्न अभिप्रेरण घटकों जैसे– वेतन, बोनस, कार्य सुरक्षा, पदोन्नति, प्रबन्ध भागीदारी, परामर्श आदि के द्वारा कार्य संन्तुष्टि स्तर में वृद्धि की जाती है।

4. प्रबन्धकीय कार्यों का आधार – प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों, जैसे– नियोजन, संगठन, नियंत्रण, समन्वय आदि को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना आवश्यक होता है। ब्रेच के शब्दों में ''अभिप्रेरण की समस्या प्रबन्ध कार्यवाही की कुंजी है।''

5. मनोबल में वृद्धि – अभिप्रेरणा कर्मचारियों की मानसिक स्थिति एवं प्रवृत्तियों को अनुकूल बनाती है। अभिप्रेरणा योजना के द्वारा व्यक्तियों की कार्य–सन्तुष्टि, आत्म विश्वास, लगन व उत्साह में वृद्धि करके उनके मनोबल को ऊंचा उठाया जा सकता है।

6. उत्पादकता में वृद्धि – उत्पादकता में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण आधार कर्मचारियों को प्रदत्त अभिप्रेरणायें ही हैं। अभिप्रेरित कर्मचारी पूर्ण लगन, उत्साह एवं निष्ठा से अपने कार्यों का निष्पादन करते हैं। फलतः उत्पादकता में वृद्धि होती है।

7. कर्मचारी समस्याओं में कमी– अभिप्रेरण कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के मध्य पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग को बढ़ाता है। फलस्वरूप अनेक कर्मचारियों समस्याओं जैसेअनुपस्थिति, शिकायतें समय व सामग्री का दुरूपयोग, असन्तोष, नैराश्य, तोड़फोड, घेराव, हड़ताल आदि में कमी हो जाती है।

8. साधनों का अधिकतम उपयोग– किस आर्गीरिस के अनुसार, ''संगठन में मनोवैज्ञानिक भण्डार पाया जाता है।'' एक अभिप्रेरित कर्मचारी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की अपेक्षा संस्था के हितों को प्राथमिकता देता है। वह साधनों को संस्था के हित में प्रयोग करके उनकी प्राप्ति, विकास व अनुरक्षण की लागतों को न्यूनतम रखता है। कर्मचारियों को कार्य–प्रेरणायें प्रदान करके उनकी क्षमताओं व अन्य साधनों का सदुपयोग किया जा सकता है।

9. प्रबन्धकीय विकास– कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबन्धकों को उनकी आवश्यकताओं व व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करना होता है। विवेकपूर्ण विश्लेषण करके

ही प्रबन्ध व्यक्तियों के उत्प्रेरकों, उद्वेगों, भावनाओं आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त, अभिप्रेरण के अन्तर्गत कर्मचारियों के साथ–साथ प्रबन्धकों को भी अभिप्रेरित किया जाता है।

10. मानवीय व्यवहार का प्रबन्ध– अभिप्रेरण की विचारधारा मानवीय व्यवहार के प्रबन्ध में अत्यन्त सहायक होती है। आधुनिक प्रबन्ध व्यवहारवाद एवं व्यवहार परिष्करण की आधारशिला अभिप्रेरण विचारधारा ही है। अभिप्रेरण सिद्धान्तों के द्वारा मानवीय व्यवहार, व्यक्तित्व, अवबोधन व दृष्टिकोण भली–भांति समझा जा सकता है।

11. अन्य कारण

1. अभिप्रेरण से निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सरल हो जाती है।

2. सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

3. कार्य के प्रति रूचि जाग्रत की जा सकती है।

4. ठोस श्रम सम्बन्धों का निर्माण किया जा कसता है।

5. कर्मचारियों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जा सकती है।

6. अच्छे कर्मचारियों को संस्था की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

7. संस्था की ख्याति में भी वृद्धि होती है।

अभिप्रेरण प्रक्रिया

अभिप्रेरण प्रकिया कुछ निश्चित चरणों में विभाजित होती है। अभिप्रेरण के उठाये जाने वाले मुख्य कदम निम्नलिखित है–

1. उद्देष्यों का निर्धारण– कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के पूर्व सर्वप्रथम अभिप्रेरण के उद्देश्यों का निर्धारण करना आवश्यक होता है। अभिप्रेरण उददेश्यों का निर्धारण कर लेने से अभिप्रेरण के स्तर साधनों, विधियों दिशा आदि के बारे में उपयुक्त निर्णय लिये जा सकते हैं।

2. प्रेरणाओं की पहचान– लक्ष्यों के पश्चात् प्रबन्धक को कर्मचारियों की भावनाओं व आवश्यकताओं का अध्ययन करके समय विशेष पर प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की पहचान कर लेनी चाहिए। प्रेरणाओं की उपयुक्त पहचान के लिए कर्मचारी की वैयक्तिक भिन्नताओं, मनोदशा, स्थिति पद आकांक्षाओं आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

3. प्रेरणाओं का समूहीकरण –विभिन्न स्तरों व पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों की प्रेरणाओं को निश्चित समूहों, जैसे– आन्तरिक एवं बाह्य वित्तीय एवं अवित्तीय, वैयक्तिक एवं सामूहिक आदि में विभाजित कर लेना चाहिए।

4. सिद्धान्त एवं तकनीक चयन– कर्मचारियों को प्रभावी ढंग से उत्प्रेरित करने के लिए उचित सिद्धान्तों व तकनीकों का चयन किया जाना चाहिए द्य अभिप्रेरण तकनीकें व्यावहारिक एवं न्यूनतम लागत वाली होनी चाहिए। मास्लो, हर्जबर्ग, मैक्लीलैंड आदि विचारकों के सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक सिद्ध हुए हैं। अभिप्रेरण के एल्डरफर, प्रक्रिया प्रधान व विषयवस्तु प्रधान सिद्धान्त अलग–अलग दशाओं व प्रबन्ध स्तरों पर कार्य करने हेतु प्रतिपादित दिये गये है।

5. विभिन्न चरों का अध्ययन– प्रभिप्रेरण की प्रक्रिया विभिन्न चरों अथवा घटकों के पारस्परिक सम्बन्ध से निर्मित होती है। अतः प्रबन्धक को इन विभिन्न चरों, जैसे– प्रेरणा, प्रयास निष्पादन संन्तुष्टि भूमिका अवबोधन पुरस्कार कार्य स्तुष्टि आदि के आपसी सम्बन्धों पर अध्ययन कर लेना चाहिए। ताकि प्रेरण प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बनाया जा सके।

6. निष्पादन का मापन – प्रबन्धकों को प्रत्येक कर्मचारी के निष्पादन का निरपेक्ष मूल्यांकन करना चाहिए। निष्पादन मूल्यांकन में किसी प्रकार का भेदभाव या पक्षपात नहीं किया जाना चाहिए। यह मूल्यांकन निर्धारित प्रमापों के आधार पर किया जाना चाहिए।

7. पुरस्कार प्रदान करना –निष्पादन का मूल्यांकन करने के पश्चात् प्रत्येक कर्मचारी को उनके निष्पादन स्तर के अनुरूप प्रदान करने चाहिए। पुरुस्कार आवश्यकता के अनुसार तथा उचित समय पर प्रदान किये जाने चाहिए। पुरुस्कार गोपनीय नहीं रखे जाने चाहिए।

8. अनुवर्तन– अभिप्रेरणा प्रदान करने के पश्चात् अभिप्रेरण तकनीकों, विधियों, योजनाओं व सिद्धान्तों का समय–समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। अभिप्रेरण प्रभाव को कर्मचारियों के निष्पादन स्तर कार्य संन्तुष्टि रचनात्मक प्रवृत्तियों आदि द्वारा मापा जा सकता है। अनुवर्तन द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि अभिप्रेरण योजनायें वांछित लाभ उत्पन्न कर रही है। अथवा नहीं।

अभिप्रेरण की विचारधाराए / दृष्टिकोण / मॉडल्स

अभिप्रेरण की विचारधाराओं को इस प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. परम्परागत विचारधारायें अथवा प्रारम्भिक दृष्टिकोण

1. आर्थिक विचारधारा

2. मानवीय सम्बन्ध मॉडल

3.मानव संसाधन मॉडल

4. कार्य की प्रकृति विचारधारा

2. सन्तुष्टि विचारधारायें

1. मास्लो की आवश्यकता क्रमबद्धता विचारधारा

2. हर्जबर्ग की अभिप्रेरण– स्वास्थ्य विचारधारा

3.एल्डरफर की विचारधारा

4.अर्जित या प्रकट आवश्यकताएं विचारधारा

5. कार्य–लक्षण विचारधारायें

3. प्रक्रिया विचारधारायें

1. द्रुम की प्रत्याशा विचारधारा

2. पोर्टर– लालर का निष्पादन सन्तुष्टि मॉडल

3. एडवर्ड लालर का प्रत्याशा माडल

4. विस्तृत प्रत्याशा विचारधारा

5. अभिप्रेरण का लक्ष्य निर्धारण विचारधारा

6. कार्य अभिप्रेरण की न्याय एवं समता विचारधारा

7. सुसंगति विचारधारा

4. पुनर्बलन या संबलन विचारधारा

1. अभिप्रेरण की व्यवहार परिष्करण विचारधारा

5. अन्य विचारधारायें

1. एक्स एवं वाई विचारधारा

2. अपरिपक्वता–परिपक्वता विचारधारा

3. उर्विक की जेड विचारधारा

4. अभिप्रेरण की एकात्मक विचारधारा

5. अभिप्रेरण की बहुलवादी विचारधारा

6. भय एवं दण्ड विचारधारा

7. पुरस्कार विचारधारा

8. कैरट एवं स्टिक विचारधारा

9. भागीदारी विचारधारा

10. कुशाग्र वातावरण की विचारधारा

संक्षेप में इनका वर्णन निम्न प्रकार है–

1. मास्लो की आवश्यकता कमबद्धता विचारधारा

1943 में अब्राहम एच०मास्लो ने इस विचारधारा का निष्पादन किया था। प्रबन्ध शास्त्र में इसे व्यापक मान्यता मिली है। इस विचारधारा के अनुसार मानवीय आवश्यकताओं की एक कमबद्धता होती है। इसी क्रम में अपनी असन्तुष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को अभिप्रेरित किया जा कसता है। व्यक्ति की आवश्यकतायें अनन्त होती हैं किन्तु वह एक कम में इनकी पूर्ति हेतु प्रयास करता है। अतः उसकी असन्तुष्ट आवश्यकताओं के स्तर को मालूम करके उनकी पूर्ति हेतु प्रेरणाएं उपलब्ध करायी जा सकती है। यह विचारधारा निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

1. आवश्यकता श्रेणियां – मास्लो के अनुसार व्यक्ति की अनन्त आवश्यकतायें हैं जो निरन्तर पूर्ति के बाद भी उत्पन्न होती रहती हैं। व्यक्ति की इन आवश्यकताओं को पांच श्रेणियों – शारीरिक, सुरक्षात्मक, सामाजिक स्वाभिमान व आत्म–विकासमें बांटा जा सकता है। मनुष्य की शारीरिक व सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकतायें प्राकृतिक व जन्म जात होती हैं, जबकि प्रेम, सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा, अहम् सम्बन्धी आवश्यकतायें जन्मजात न होकर अनुभव, शिक्षा, संस्कार व समाज के द्वारा विकसित होती है।

2. आवश्यकता क्रमबद्धता– मास्लो के अनुसार आवश्यकताओं को उनकी शक्ति एवं पुनरावृत्ति की सम्भावना के आधार पर कमबद्ध किया जा सकता है। चित्र संख्या 58.7 से स्पष्ट है कि इस आधार पर शारीरिक आवश्यकतायें प्रथम श्रेणी में आती हैं तथा आत्म–विकास सम्बन्धी आवश्यकतायें पांचवी श्रेणी में भारलो के अनुसार आवश्यकताओं की ये श्रेणियां व उनकी कमबद्धता सार्वभौमिक है तथा प्रत्येक संस्कृति पर लागू होती है।

3. अभाव एवं प्रभुत्व – मास्लो के अनुसार किसी आवश्यकता की जितनी कम सन्तुष्टि होती है, व्यक्ति के लिए वह उतनी ही प्रभावी हो जाती है। अर्थात् अतृप्त आवश्यकताओं का महत्व एवं शाक्ति सदैव ज्यादा होती है। निचले स्तर की असन्तुष्ट आवश्यकताओं का प्रभाव का प्रभाव अन्य आवश्यकताओं की अपेक्षा अधिक होता है। अतः जब तक इनकी पूर्ति नहीं हो जाती, व्यक्ति का समस्त ध्यान व साधन इनकी पूर्ति में लगे रहेंगे।

4. संतुष्टि एवं उत्प्रेरण– जिन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो जाती है, उनका महत्व एवं शक्ति कम हो जाती है तथा अगले स्तर की आवश्यकतायें क्रियाशील हो उठती हैं। दूसरे शब्दों में जब किसी स्तर की आवश्यकतायें ठीक प्रकार से संन्तुष्ट हो जाती है तभी अगले स्तरों की आवश्यकताये कम से जागृत हो पाती है। सन्तुष्ट आवश्यकता मानवीय व्यवहार को अभिप्रेरित नही करती है।

5. शारीरिक आवश्यकताओं का अत्यधिक महत्व – शारीरिक आवश्यकतायें सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। मास्लों के अनुसार ''जिस व्यक्ति के पास भोजन, सुरक्षा, प्रेम व आत्म–सम्मान का अभाव है, वह सबसे पहले भोजन की ही मांग करेगा, अन्य की नहीं।''

6. आत्म–सन्तुष्टि कभी न होना – निचले स्तर की आवश्यकताओं की भांति आत्म–विकास के स्तर पर सन्तुष्टि कभी घटित नही होती है। अतः अभिप्रेरण का आधार सदैव विद्यमान रहता है।

आवश्यकताओं की क्रमबद्धता – मास्लो की विचारधारा में आवश्यकताओं की क्रमबद्धता निम्न प्रकार है–

1. शारीरिक आवश्यकतायें – शारीरिक आवश्यकतायें मानव जीवन को चलाने के लिए आवश्यक होती है। इनमें हवा, पानी, भोजन, नींद, कपड़ा मकान, यौन सम्पर्क आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये आवर्तक प्रकार की होती है।

2. सुरक्षा आवश्यकता – व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकतायें संतुष्ट हो जाने के पश्चात् सुरक्षा के लिए आवश्यकता होती है। इनमें हवा, पानी, भोजन, नींद, कपड़ा, मकान, यौन सम्पर्क आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये आवर्तक प्रकृति की होती है।

3. सामाजिक आवश्यकता – सामाजिक आवश्यकतायें व्यक्ति की प्रेम, स्नेह, सहयोग, आत्मीयता, अपनत्व, मैत्री व सामाजिक सम्बन्ध के प्रति इच्छा को अभिव्यक्त करती है। व्यक्ति एक समाजिक प्राणी होने के नाते इन आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है।

4. स्वाभिमान आवश्यकता – सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के बाद व्यक्ति की अहम एवं स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकतायें क्रियाशील हो जाती हैं। स्वाभिमानी होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति संगठन में सम्मान, प्रशंसा, मान्यतां, ख्याति प्रतिष्ठा, स्वतन्त्रता, उपलब्धि आदि की इच्छा करने लगता है। आवश्यकतायें व्यक्ति के महत्व को प्रकट करती है तथा उसमें आत्म–विश्वास जगाती है।

5. आत्म–विकास की आवश्यकता – आवश्यकतायें व्यक्ति की क्षमताओं, प्रतिभाओं, व सम्भावनाओं के समग्र विकास से सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आन्तरिक क्षमताओं से सम्बन्ध खती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आन्तरिक क्षमताओं निखारना व अपनी चरम ऊंचाईयों को छू लेने की इच्छा रखता है। तथा इस स्थिति तक पहुचें बिना बेचौन रहता है। मास्लो के अनुसार ष्एक व्यक्ति जो है, वह अधिक से अधिक हो जाने तथा जो वह बन सकता है, वह सब कुछ बन जाने की इच्छा ही आत्मविकास

मास्लो के अनुसार आवश्यकता का कम विभिन्न बातों पर निर्भर करता है। उनमें से कुछ प्रमुख बाते निम्नलिखित है–

1. उच्च आवश्यकतायें निम्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का परिणाम होती है।

2. कोई भी आवश्यकता मनुष्य के लिए अभिप्रेरण का कार्य तब करेगी जबकि उसकी अन्य निम्न–स्तरीय आवश्यतायें पूरी हो चुकी हों।

3. आवश्यकतायें जितनी ऊंची होगी, जीवन रक्षा की दृष्टि से उनका उतना ही कम महत्व होगा।

4. उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति में मानसिक तनाव कम होता है।

5. उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति से मानसिक सन्तोष में वृद्धि हेती है।

6. उच्च अवश्यकतायें बाहा वातावरण तथा आर्थिक दशा पर निर्भर करती है।

7. व्यक्ति के आत्म– मूल्यांकन से उच्च स्तरीय आवश्यकताओ की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है।

मास्लो की विचारधारा का भूल्यांकन मांस्लो की विचारधारा अभिप्रेरण व मानवीय व्यवहार की मौलिक विचारधारा है। इसकी व्यवहारिकता के कारण हो इसे अधिकांश देशो में स्वीकार किया गया है। प्रबन्धकीय विचारको ने इसके आधार पर अभिप्रेरण के अन्य सिद्धातो का विकास किया है। प्रबन्धक इस विचारधारा के द्वारा अपने अधीनस्थो की असन्तुष्ट आवश्यकताओ की कमबद्धता के द्वारा मानवीय व्यवहार को बडी सुगमता से समझा जा सकता है। किन्तु अनेक प्रबन्ध विचारको नें इस विचारधारा की कुछ आलोचनाये भी की है, जो इस प्रकार है–

1. आवश्यक–क्रमबद्धता का लागू न होना– अलोचकों का यह विचार है कि व्यक्ति मास्लो के द्वारा बताये गये क्रम में अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते हैं। एच०एल० पोर्टर के अनुसार, ''आवश्यकतायें एक क्रमबद्धता का अनुगमन नहीं करती हैं विशेषकर जब व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक मान्यतायें भीआवश्यकताओं के रूप को प्रभावित करती हैं।'' यह भी पाया गया कि उच्च–स्तर पर आवश्यकताओं का महत्व व्यक्ति के अनुसार बदल जाता है।

2. वर्गीकरण की अस्पष्टता– अधिकांश आवश्यकताओं के एक दूसरे में व्याप्त होने के कारण उनमें स्पष्ट अन्तर कर पाना असम्भव नहीं है। उसके अतिरिक्त, आस्लो के इस वर्गीकरण को अन्तिम नहीं माना जा सकता। स्वयं मास्लो ने वर्ष बाद दो कुछ और आवश्यकताओं – एकीकरण तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं का वर्णन किया है।

3. व्यवहार की जटिलता– मानवीय व्यवहार विभन्न घटकों से निर्धारित एवं प्रेरित होता है। अतः कई बार प्राथमिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि न होने पर भी सामाजिक स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकतायें उत्पन्न हो सकती है।

4. सन्तुष्टि आवश्यक नहीं– अनेक अनुसंधानों से स्पष्ट हो गया है कि कई बार कुछ आवश्यकतायें सन्तुष्टि के साथ–साथ घटती नहीं है वरन् बढ़ जाती हैं, जैसे यौन व अहम् सम्बन्धी आवश्यकतायें। अतः इन पर नियंत्रण व इनकी सन्तुष्टि असम्भव हो जाती है।

5. यह ज्ञात करना कठिन होता है कि किस व्यक्ति की कौन–सी आवश्यकता महत्वपूर्ण है तथा कौन–सी नहीं।

6. व्यक्तियों का व्यवहार संवेदनशील है अतः कभी–कभी बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति न होने पर भी अहंकार या सम्मान सम्बन्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर आधारित है परन्तु कुछ आवश्यकतायें कभी भी सन्तुष्ट नहीं होती है।

2. हर्जबर्ग की अभिप्रेरण स्वास्थ्य विचारधारा – इस विचारधारा का प्रतिपादन प्रो० फेडरिक हर्जबर्ग ने दो सौ से अधिक इंजीनियरों एवं लेखाकारों के साथ लिये गये

साक्षात्कारों के आधार पर किया था। यह सिद्धान्त बतलाता है कि कार्य स्थल पर कर्मचारी के व्यवहार को प्रभावित करने वाले समस्त तत्वों को दो समूहों स्वास्थ्य पर अभिप्रेरक में बांटा जा सकता है। स्वस्थ्य तत्व कार्य वातावरण में सम्बन्धित होते हैं जबकि अभिप्रेरक तत्व अधिक एवं श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। इन दो घटकों पर आधारित होने के कारण इसे द्वि–घटक विचारधारा भी कहते हैं। हर्जबर्ग का मानना है कि जब व्यक्ति असन्तुष्ट होता है तो इस असन्तुष्टि का कारण कार्य वातावरण होता है, जिसके अन्तर्गत वे कार्य करते हैं। किन्तु जब व्यक्ति अन्तुष्टि का अनुभव करते हैं तो यह असन्तुष्टि केवल कार्य का परिणाम होती है, वातावरण का नहीं अतः असन्तुष्टि को दूर करने के लिए स्वास्थ्य तत्वों तथा अभिप्रेरित करने के लिए अभिप्रेरण तत्वों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, ये घटक निम्नलिखित है–

हर्जबर्ग के स्वास्थ्य एवं अभिप्रेरक तत्व

क्र.सं.	स्वास्थ्य तत्व	अभिप्रेरक तत्व
1	कम्पनी नीति एवं प्रशासन	उपलब्धि
2	पर्यवेक्षण	मान्यता
3	कार्य दशायें	चुनौतीपूर्ण कार्य
4	पारस्परिक संबंध	उन्नति एवं विकास
5	वेतन	उत्तरदायित्व कार्य
6	पद एवं कार्य सुरक्षा	कार्य स्वयं

अ. स्वास्थ्य तत्व– स्वास्थ्य तत्वों में संस्था की नीतियों प्रशासन, पर्यवेक्षण व्यवस्था, कार्यदृ दशाओं, वेतन आदि को सम्मिलित किया जाता है। इनका सम्बन्ध कार्य वातारण से होता है तथा ये कार्य के बाह्य घटक होते हैं। ये कर्मचारी की कार्यक्षमता को बनाये रखते है। अतः इन्हे अनुरक्षण तत्व भी कहा जाता है। वस्तुतः ये तत्व असन्तुष्टि को दूर कर अभिप्रेरण के लिए एक उचित आधार तैयार करते हैं। दूसरे शब्दों में इनके अभाव में व्यक्ति को कष्ट व असंतोष होगा, किन्तु इनके होने से या अनुकूल होने से व्यक्ति को सन्तुष्टि प्रेरणा प्राप्त नहीं होगी। ये असन्तोष उत्पन्न करने वाले घटक अभिप्रेरक नहीं है।

ब. अभिप्रेरक तत्व– हर्जबर्ग के अनुसार इनमें उपलब्धि, मानव उन्नति एवं विकास चुनौतीपूर्ण कार्य आदि घटक सम्मिलित हैं। ये कार्य से सम्बन्धित होते हैं। ये व्यक्ति को अधिक एवं अच्छा कार्य करने के प्रेरित करते हैं। इन्हें संतुष्टि प्रदान करने वाले तत्व भी कहा जाता है। हर्ज का मत है कि अभिप्रेरक तत्वों के द्वारा ही व्यक्तियों को अभिप्रेरित किया जा सकता स्वस्थ्य तत्वों के द्वारा नहीं।

हर्जबर्ग ने यह भी स्पष्ट किया कि स्वास्थ्य तत्व प्रेरणायें हैं जो कि तत्व हैं तथा जिसे वातावरण से प्राप्त किया जाता हैं जबकि अभिप्रेरणा आन्तरिक तत्व है जो स्वयं व्यक्ति में होता है। यह विचारधारा बतलाती है कि प्रबन्धक को केवल स्वास्थ्य तत्वों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, वरन् कार्य को ही समुन्नत करके चुनौतीपूर्ण एवं रूचिकर बनाया जाना चाहिए ताकि व्यक्तियों को अभिप्रेरित किया जा सके।

मूल्यांकन – प्रेरणात्मक घटको एव मानवीय व्यवहार की जटिलता इस सिद्धान्त के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है प्रबन्ध व्यवहार में व्यापक उपयोगिता के बावजूद भी इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएं की जाती हैं–

1. श्रेणी विभाजन कठिन – हर्जबर्ग द्वारा प्रस्तुत श्स्वास्थ्य एवं अभिप्रेरक तत्व श्रेणियां निरपेक्ष नहीं हैं। वेतन एक व्यक्ति के लिए असन्तुष्टि उत्पन्न करने वाला तत्व हो सकता है, किन्तु किसी अन्य के लिए यह एक अभिप्रेरक तत्व सिद्ध हो सकता है। तत्वों को स्वास्थ्य एवं अभिप्रेरकों की श्रेणी में विभाजित करना अत्यन्त कठिन है।

2. स्वास्थ्य तत्वों द्वारा अभिप्रेरण– हर्ज का यह मत है कि स्वास्थ्य तत्व व्यक्तियों को अभिप्रेरित नहीं करते हैं, ठीक नहीं है। वास्तव में विकासशील देशों तथा प्रबन्ध के निचले स्तरों पर स्वास्थ्य तत्व की अभिप्रेरणा प्रदान करते हैं।

3. कार्य सन्तुष्टि का निर्धारण– हर्जबर्ग द्वारा यह मानना है कि अभिप्रेरकों का योग ही कार्य सन्तुष्टि का निर्धारण करता है, उचित नहीं है। वस्तुतः कार्य सन्तुष्टि पर स्वास्थ्य तत्वों व अभिप्रेरक तत्वों दोनों का ही प्रभाव पड़ता है।

4. दोषपूर्ण अनुसंधान विधि – कुछ आलोचकों के अनुसार यह सिद्धान्त दोषपूर्ण अनुसंधान विधि पर आधारित है। केवल व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अभिप्रेरणा की सही जानकारी नहीं की जा सकती है।

5. उच्च–स्तर पर लागू– अलोचकों का कथन है कि यह सिद्धान्त केवल प्रबन्धकीय स्तर के कर्मचारियों पर ही लागू होता है, सामान्य कर्मचारियों अथवा श्रमिकों पर नहीं।

6. निष्पादन स्तर की अपेक्षा– यह सिद्धान्त व्यक्ति के निष्पादन स्तर की अपेक्षा सन्तुष्टि अथवा असन्तुष्टि पर ही ज्यादा ध्यान देता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी हर्जबर्ग का सिद्धान्त कार्य अभिप्रेरण में कार्य–केन्द्रित तत्वों की ओर ध्यान आकर्षित करता है। यह अभिप्रेरण हेतु कार्य सम्पन्नता व कार्य की पुनर्रचना पर पर्याप्त ध्यान देता है।

मास्लो एवं हर्जबर्ग की विचारधाराओं में सम्बन्ध

अ. भिन्नताएं– मास्लो एवं हर्जबर्ग की अभिप्रेरण विचारधाराओं के अन्तर निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है–

अन्तर का आधार	मास्लो की विचारधारा	हर्जबर्ग की विचारधारा
आधार	मास्लो की विचारधारा मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित है।	हर्जबर्ग की विचारधारा हर्जबर्ग की विचारधारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले घटकों पर आधारित है।
अभिप्रेरक	मास्लो के अनुसार आवश्यकतायें व्यक्ति के व्यवहार को अभिप्रेरित	हर्जबर्ग की विचारधारा में अभिप्रेरक तत्व सदैव ही अभिप्रेरणा प्रदान करते हैं।

	करती हैं।	
कार्य सन्तुष्टि	मास्लो के अनुसार कार्य सन्तुष्टि आवश्यकताओं की पूर्ति पर निर्भर करती है।	जबकि हर्जबर्ग की विचारधारा अभिप्रेरकों का योग प्रकट करता है।
सार्वभौमिकता	यह विचारधारा अधिक व्यावहारिक एवं सार्वभौमिक है।	यह विचारधारा स्वास्थ्य तत्वों को अभिप्रेरक नहीं मानती है। अतः व्यावहारिक है।
वर्गीकरण	यहां एक कमबद्धता में आवश्यकताओं को प्राथमिक व द्वितीयक श्रेणियों में बांटा गया है।	इसमें आवश्यकताओं को स्वास्थ्य व अभिप्रेरक तत्वों में बांटा गया है।
स्वास्थ्य तत्व	न्निरतरीय असन्तुष्टि आवश्यकतायें व्यवहार को अभिप्रेरित करती हैं।	जबकि स्वास्थ्य तत्व के असन्तुष्टि को रोकते हैं।

ब. समानतायें – मारलो व हर्जबर्ग के सिद्धान्तों में निम्नलिखित समानतायें हैं–

1. मास्लो की विचारधारा प्रत्यक्ष रूप में तथा हर्जबर्ग की अप्रत्यक्ष रूप में आवश्यताओं पर आधारित है।

2. दो ही विचारधारायें मानव को आवश्यकताओं में प्रेरित प्राणी मानती है।

3. दोनों विचारधाराएं अभिप्रेरण की तकनीकों व साधनों का वर्णन करती हैं प्रक्रिया विचारधाराओं की भांति अभिप्रेरण चरों का वर्णन करती है।

4. मास्लो की निम्न स्तरीय आवश्यकताएं हर्जबर्ग द्वारा बताये गये स्वास्थ्य तत्व समान है।

5. दोनों विचारधारायें प्रबन्ध जगत में अत्यन्त व्यावहारिक एवं महत्वपूर्ण है।

3. एल्डरफ की विचारधारा

येल विश्वविद्यालय के क्लेटन एल्डरफर ने मास्लों आवश्यकता कमबद्धता विचारधारा को और अधिक व्यावहारिक बनाते हुए एक नई विचारधारा का विकास किया है। मास्लो तथा हर्जबर्ग की भांति एल्डरफर ने आवश्यकताओं का वर्गीकरण करते हुए कहा है कि उच्च स्तरीय एवं निम्न स्तर आवश्यकताओं में एक मौलिक अन्तर होता है।

एल्डरफर ने आवश्यकताओं को तीन श्रेणियों – अस्तित्व सम्बन्ध तथा विकास में बांटा है, इसलिए इनकी विचारधारा कहा जाता है। अस्तित्व आवश्यकताओं का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन रहने के लिए आवश्यक तत्वों तथा उसके शारीरिक कल्याण से है। सम्बद्धता आवश्यकता अन्तर्वैयक्तिक एवं सामाजिक सम्बन्धों पर बल देती हैं। विकास आवश्यकताये व्यक्ति के वैयक्तिक विकास की इच्छा से जुडी हुई है।

आवश्यकता श्रेणियों में सम्बन्ध

अंग एल्डरफर की विचारधारा के निम्न चार अंग है–

1. सन्तुष्टि आरोह– यह तत्व मास्लो की विचारधारा में भी लागू होगा है। इसका आशय यह है कि जब निचले स्तर की आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तो उच्च स्तर की आवश्यकतायें जाग्रत हो जाती हैं तथा महत्वपूर्ण बन जाती है।

2. नैराश्य या विफलता– निराशा तब घटित होती है जब व्यक्ति किसी आवश्यकता की पूर्ति में असफल हो जाता है। इस निराशा से व्यक्ति के लिए असन्तुष्ट आवश्यकता और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है तथा वह अधिक शक्ति के साथ उसकी पूर्ति का प्रयास करता है जब तक कि वह लगातार कई बार असफल न हो जाये।

3. नैराश्य पश्चगमन – इस अवस्था में जब व्यक्ति किसी आवश्यकता पूर्ति के सम्बन्ध में बार–बार निराशा का अनुभव होता है तो वह निम्न स्तरीय आवश्यकताओं, जो कि उसे अधिक यथार्थपूर्ण एवं पहुंच योग्य लगती हैं, पर अपना केन्द्रित कर लेता है।

4. अभिलाषा– यह अंग बतलाता है कि विकास अपनी प्रकृति के कारण गहन रूप से संतृप्तकारी होता है। एक व्यक्ति जितना को जितनी अधिक पूरी की जाती है वह उतने ही महत्वपूर्ण बन जाती है तथा व्यक्ति उसकी पूर्ति के लिए उतना ही अधिक अभिप्रेरित होता है।

ई०आर०एस० विचारधारा के लक्षण एवं मास्लो की विचारधारा में अन्तर

1. मास्लो, हर्जबर्ग तथा एल्डरफर की आवश्यकता श्रेणियों में पाररिपरिक सम्बन्ध है, लेकिन फिर भी ई०आर०जी० आवश्यकताओं के बीच सीमांकन रेखायें कठोर नहीं हैं।

2. एल्डर ने मास्लो की भांति आवश्यकताओं के कमबद्ध स्तर नहीं सुझाये हैं, वरन् उन्होंने आवश्यकताओं का एक सातत्य–क्रम प्रस्तुत किया है।

3. एल्डर के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि उच्च–स्तरीय आवश्यता जाग्रत होने के पूर्व निम्न–स्तरीय आवश्यकता पूरी की जाये।

4. एल्डर के अनुसार यह भी आवश्यक नहीं है कि किसी आवश्यकता के फलस्वरूप ही वह उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति पृष्ठभूमि अथवा सांस्कृतिक वातावरण के कारण यह सम्भव है कि अस्तित्वगत आवश्यकता के अतृप्त रहते हुए भी उच्च स्तरीय सम्बद्धता आवश्यकतायें जाग्रत हो जायें। इस प्रकार विकास आवश्यकताओं को अधिकाधिक पूरा करने से यह सम्भव है कि उनकी तीव्रता और अधिक बढ़ जाये।

5. इस विचारधारा के अनुसार एक समय पर एक से अधिक आवश्यकतायें कार्यशील हो सकती है।

6. इसके अनुसार जब उच्च स्तरीय आवश्यकता की सन्तुष्टि नहीं की जाती है निम्न–स्तरीय आवश्यकता को पूरा करने की इच्छा बढ़ जाती है।

7. इस विचारधारा में आयाम भी है जबकि मास्लो यह मानता है कि व्यक्ति किसी स्तर की आवश्यकता के पूरी न होने पर उसी स्तर पर टिका रहता है। नीचे नहीं लौटता।

सम्पूर्ण रूप से, विचारधारा गास्लो तथा हर्जबर्ग की विचारधाराओं की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक, प्रामाणिक एवं अभिप्रेरण की जटिलताओं की व्याख्या करने में सहायक है।

4. प्रकट या अर्जित आवश्यकताएं विचारधारा

इस विचारधारा को मूल रूप से हेनरी मूरे ने प्रतिपादित किया था। बाद में इसे जे०लब्ल्यू0 एटकिन्सन ने संशोधित किया। इस विचारधारा के वर्तमान प्रतिपादन एवं अनुसंधानकर्ता डेविड मैक्लीलैंड है। मैक्लीलैंड का मत है कि व्यक्ति की कुछ आवश्यकतायें अर्जित तथा समाजिक रूप से सीखी हुई होती है, क्योंकि वह वातावरण के साथ अर्न्तव्यवहार करता है। उनके अनुसार संगठन में व्यक्ति की निम्न तीन अर्जित आवश्यकतायें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

1. उपलब्धि की आवश्यकता – उपलब्धि की आवश्यकता रखने वाले व्यक्ति के निम्न लक्षण होते हैं

अ. वह समस्याओं के समाधान खोजने के लिए वैयक्तिक उत्तरदायित्व स्वीकार करता है।

ब. वह लक्ष्य केन्द्रित होता है।

स. वह चुनौती चाहता है तथा उच्च व्यावहारिक लक्ष्य निर्धारित करता है तथा उन्हें प्राप्त करता है, एवं

द. अपने अपने कार्यों की प्रतिपुष्टि चाहता है।

मैक्लीलैंड के अनुसार उच्च उपलब्धि की आवश्यकता रखने वाले व्यक्ति अपनी उपलब्धि को ही संतृप्तकारी एवं पर्याप्त पुरस्कार मानते हैं। वे कठिन कार्यों को हाथ में लेते हैं लेकिन तभी जब वे सफलता से आशान्वित होते हैं। वे सफलता मिलने तक कार्य में डूबे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति उद्यमिता को पसन्द करते हैं।

2. शक्ति की आवश्यकता – शक्ति की उच्च चाह का तात्पर्य है कि व्यक्ति दूसरों को प्रभावित अथवा नियन्त्रित करना चाहता है। शक्ति चाहने वाले व्यक्तियों के निम्न लक्षण होते हैं।

अ. वह दूसरों पर प्रभाव अथवा सत्ता स्थापित करना चाहता है।

ब. वह प्रभुत्वशाली सिद्ध होने के लिए दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करता है।

स. वह दूसरों के साथ मुकाबला चाहता है।

मैक्लीलैण्ड के अनुसार शक्ति के दो पहलू हैं– एक सकारात्मक जो कि परिणामों को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के लिए आवश्यक होता है। दूसरा ऋणात्मक जो कि वैयक्तिक लाभ के लिए होता है किन्तु संगठन के लिए हानिप्रद हो सकता है। मैक्लीलैंड के अनुसार कुछ

व्यक्ति दूसरों पर प्रभुत्व कायम करने के लिए वैयक्तिक शक्ति की चाह रखते हैं। इससे अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं। दूसरी ओर, कुछ व्यक्ति समूह के हित में लक्ष्य प्राप्ति के लिए सामाजिक शक्ति की इच्छा रखते हैं।

1. सम्बन्ध की आवश्यकता– सम्बन्ध की आवश्यकता स्नेह, मैत्री एवं प्रेम की इच्छा को दर्शाती है। सम्बन्धों की उच्च इच्छा रखने वाला व्यक्ति

अ. दूसरों के साथ सघन भावनात्मक रिश्ता रखना चाहता है।

ब. सामाजिक क्रियाओं, समारोहों में भाग लेता है।

स. दूसरों की प्रशंसा चाहता है।

द. समूहों व संगठनों की सदस्यता चाहता है तथा अपनत्व की भावना रखता है। मैक्लीलैण्ड के अनुसार निष्पादन की इच्छा अथवा अभिप्रेरण की शक्ति उपयुक्त आवश्यकताओं की तीव्रता पर निर्भर करती है। मैक्लीलैण्ड ने इस सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निम्न प्रकार बताये हैं–

1. उच्च उपलब्धकर्ता वैयक्तिक उत्तरदायित्व प्रतिपुष्टि, सामान्य जोखिम, चुनौती प्राप्ति योग्य उद्देश्यों के साथ कार्य स्थिति को पसन्द करते हैं।

2. उपलब्धि की उच्च चाह व्यक्ति को आवश्यक रूप से अच्छा प्रबन्धक बनने के लिए प्रेरित नही करती है। उच्च उपलब्धि की इच्छा रखने वाले व्यक्ति वैयक्तिक रूप श्रेष्ठ कार्य करने में उत्सुक होते हैं, वे दूसरों को उत्कृष्ट कार्य के लिए प्रभावित करने में रूचि नहीं लेते।

3. श्रेष्ठ प्रबन्ध शक्ति के लिए उच्च इच्छा रखते हैं किन्तु सम्बन्धों के प्रति उनकी आवश्यकता कम होती है। कर्मचारियों को उपलब्धि प्रशिक्षण प्रदान करके उनकी 'उपलब्धि' आवश्यकता को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

4. कार्य लक्षण विचारधारायें –कार्य लक्षण विचारधारायें कार्य के विशिष्ट ष लक्षणों को निर्धारित करती है। तथा यह बताती है कि भिन्न का के निर्माण के लिए इन लक्षणों को कैसे मिलाया जाये तथा इन कार्य लक्षणों का कर्मचारी अभिप्रेरणा सन्तुष्टि तथा निष्पादन से सम्बन्ध भी स्पष्ट करती है। संक्षेप में इन विचारधारा के अनुसार कर्य के विशेष तत्व कर्मचारी अभिप्रेरणा को प्रभावित कर सकते हैं। कार्य लक्षण विचारधाराओं में निम्न दो विचारधारायें महत्वपूर्ण हैं–

1. अपेक्षित कार्य गुण विचारधारा– कार्य लक्षण दृष्टिकोंण का प्रारम्भ 1960 के मध्य में टर्नर तथा लॉरेन्स के अग्रणी कार्य के साथ हुआ था। उन्होंने अपने अनुसंधान कार्य में विभिन्न प्रकार के कार्यों के कर्मचारियों की सन्तुष्टि एवं अनुपस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन किया था। उन्होंने पाया कि जो कार्य कर्मचारियों की सन्तुष्टि में वृद्धि करते हैं तथा अनुपस्थिति दर को कम करते हैं। टर्नर एवं लॉरेन्स ने छः कार्य– लक्षणों के संदर्भ में कार्य जटिलता को परिभाषित किया था। ये है– 1. विविधता 2. स्वतंत्रता 3. उत्तरदायित्व 4. ज्ञान एवं कौशल, 5. आवश्यक सामाजिक अन्तर्व्यवहार, तथा 6. ऐच्छिक सामाजिक

अन्तर्व्यवहार। जिस कार्य में ये छः गुण अधिक मात्रा में होंगे, वह कार्य अधिक जटिल एवं उत्प्रेरक होगा।

यह विचारधारा निम्न तीन कारणों से महत्वपूर्ण मानी जाती है –

1. यह बताती है कि कर्मचारी विभिन्न प्रकार के कार्यों के प्रति अलग–अलग ढंग से प्रतिक्रिया करते हैं।

2. यह कार्य के लक्षणों का एक प्रारम्भिक समूह प्रस्तुत करती है जिससे कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. यह विचारधारा कार्यों के प्रति कर्मचारियों की प्रतिक्रियाओं में वैयक्तिक अन्तरों के प्रभाव पर भी विचार करने पर बल देती है।

2. कार्य लक्षण मॉडल – कार्य लक्षण मॉडल का प्रतिपादन हेकमैन एंव ओल्डहॉम ने किया था। इस मॉडल का प्रतिपादन हेकमैन एवं होल्डहॉम ने किया था। इस मॉडल के अनुसार किसी भी कार्य का निम्न पाँच आधारभूत कार्य आयामों द्वारा वर्णन किया जा सकता है –

1. कौशल विविधता– कार्य में विभिन्न क्रियाओं की सीमा ताकि श्रमिक अपनी विविध योग्यताओं व कौशल का उपयोग कर सकें। .

2. कार्य अभिन्न्ता – वह सीमा जिसमें कार्य को एक सम्पूर्ण इकाई एवं विशिष्ट पहचान–योग्य प्रकार्य के रूप में पूरा किया जा सके।

3. कार्य महत्व – किसी कार्य द्वारा दूसरों के जीवन पर गहन प्रभाव डालने की सीमा।

4. स्वतन्त्रता – किसी कार्य में इसके निष्पादन हेतु कार्य–पद्धतियों को प्रयोग में लाने अथवा कार्य का अनुसूचियन करने में मिली स्वतन्त्रता व स्वनिर्भरता की सीमा।

5. प्रतिपुष्टि कार्य निष्पादन की प्रभावशीलता को मापने के पश्चात् सुधारात्मक कार्यवाही हेतु दी जाने वाली सूचना।

कार्य लक्षण मॉडल की सामान्य मान्यता यह है कि कार्य लक्षणों का एक बहुप्रयोजन समूह होता है तथा ये लक्षण व्यवहारात्मक परिणामों पर अपना प्रभाव डालते हैं। इस मॉडल द्वारा अभिप्रेरणात्मक अन्तः क्षमता की गणना निम्न प्रकार की जाती है –

3. प्रक्रिया विचारधारायें

अभिप्रेरण की सन्तुष्टि विचारधारायें आवश्यकताओं तथा उनके सम्बन्धित घटकों, जो व्यवहार को शक्ति प्रदान करते हैं, पर केन्द्रित है। प्रक्रिया विचारधारायें बताती हैं कि लक्ष्यों की ओर व्यवहार को क्या चीज प्रभाहित करती है तथा व्यक्ति जो व्यवहार करते हैं, उसे व्यवहार को वे कैसे चुनते हैं। प्रक्रिया विचारधारायें अग्राकित बातों पर बल देती है–

1. व्यवहार केवल आवश्यकताओं से ही संचालित नहीं होता है। व्यवहार किसी परिस्थिति के बारे में अवबोध एवं प्रत्याशाओं तथा उसके संभावित परिणामों का भी फल होता है।

2. व्यवहार कैसे जन्म लेता है तथा क्रियाशील होता है।

3. कैसे तथा किन–किन लक्ष्यों से व्यक्ति अभिप्रेरित होते हैं।

4. प्रक्रिया विचारधारा यह भी बतलाती है कि अभिप्रेरण की प्रक्रिया में कौन से घटक कार्य करते हैं तथा वे आपस में कैसे सम्बन्धित होते हैं।

5. ये विचारधारायें अधिकांशतः संज्ञानात्मक प्रकृति की होती है।

इकाई–5

असन्तुष्टि की भावना से पीडित होकर साम्य एवं न्यायसंगतता की स्थिति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार यह विचारधारा इस बात को दर्शाती है कि व्यक्ति केवल अपने को मिलने वाले पुरस्कार से ही सम्बन्ध नहीं रखते हैं वरन् वे अपने पुरस्कार का दूसरों को मिलने वाले पुरस्कार से भी सम्बन्ध देखते हैं।

सुसंगति विचारधारा (Consistency Theory)– सुसंगति विचारधारा साम्य अथवा सन्तुलन विचारधारा का आधुनिक स्वरूप है। इस विचारधारा के आधुनिक प्रतिपादक अब्राहम कोरमैन (Abraham Korman) ने इसके निम्न आधारभूत सिद्धान्त बतलाये है–

(i) अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियायें व्यक्ति द्वारा अपनी स्वयं की दुसरों की तथा जगत की प्रकृति के सम्बन्ध में अपनी विश्वास प्रणालियों के साथ सुसंगत रहने की प्रेरणा के परिणाम हैं।

(ii) विश्वास प्रणालियाँ जो कि उपलब्धि सृजनात्मकता तथा आक्रामकता के विभिन्न स्तरों को जन्म देती हैं एक ही प्रकार के वातावरण का परिणाम हैं तथा उनमें ही विकसित होती है।

(iii) निश्चित दशाओं में बदलते हुए वातावरण के कारण उपलब्धि सृजनात्मकता आक्रामकता में भी परिवर्तन होते हैं।

संक्षेप में वैयक्तिक अनुभव तथा दूसरों की प्रत्याशाओं के आधार पर व्यक्ति की स्व–धारणा निर्मित होती है। व्यक्ति अपने समस्त कार्यो में अपनी इस स्व–धारणा के साथ सन्तुलन बनाने अथवा सुसंगत रहने के लिए अभिप्रेरित होता है। सरल शब्दों में व्यक्ति अपनी स्व–धारणा को बनाये रखने का प्रयास करता है।

पुनर्बलन अथवा संबलन विचारधारा(Reinforcement Theory)

अभिप्रेरण की प्रक्रिया विचारधारायें संज्ञानात्मक विचारधारायें हैं। भावनाओं अभिवुत्तियों अवबोधों तथा प्रत्याशाओं पर बल देती है। पुनर्बलन विचारधारा व्यवहाररत्मक विचारधारायें हैं जो क्रियाओं व्यवहार तथा मूर्त प्रतिक्रियाओं पर बल देती है। पुनर्बलन विचारधारायें मानती हैं कि अभिप्रेरण एवं व्यवहार क्रिया के परिणामों से उत्पन्न होते हैं (MotivationAnd behaviour derive from the consequences ofAction)। अभिप्रेरण की संज्ञानात्मक विचारधारायें यह मानती है कि विचार प्रक्रिया ही व्यवहार को निर्धारित करती है जबकि संबलन विचारधाराओं के अनुसार व्यवहार का निर्धारण पूर्व के कार्यों के परिणामों पुरस्कारों अथवा दण्ड के द्वारा होता है। Consequences &Rewards or (Behaviour is determined by the punishments of previousActions) मनोवैज्ञानिक इसे प्रभाव का सिद्धान्त कहते है। इसके अनुसार यह व्यवहार जिसके प्रीतिकार परिणाम होते हैं उसकी पुनरावृत्ति की सम्भावना होती है। इस प्रकार प्रबन्धक पुरस्कारों को नियन्त्रित करके व्यवहार को प्रभावित कर सकते है संक्षेप में पुनर्बलन विचारधारा के अनुसार व्यक्ति उन्हीं व्यवहारों को दोहराते हैं जिनके परिणाम सुखद एवं वाछनीय होते हैं तथा ऐसे व्यवहारों को टालते है जो अवांछनीय परिणाम उत्पन्नकरते है। इस प्रकार

ष्व्यवहार स्वयं इसके परिणाम का फल होता है अथवा उनसे क्रियाशील होता है। पुनर्बलन विचारधारा के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है–

(i) यह व्यवहारवादी दृष्टिकोण है।

(ii) यह विचारधारा व्यवहार को वातावरण से प्रेरित मानती है (iii) पुरस्कार व्यवहार को नियन्त्रित करते है।

(iv) यह विचारधारा व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति पर ध्यान नहीं देती हैं वरन केवल उसके व्यवहार पर बल देती है।

(v) यह व्यवहार को कौन प्रारम्भ करता है पर ध्यान नहीं देती है बल्कि व्यवहार को क्या चीज नियन्त्रित करती है पर देती है।

अभिप्रेरण की व्यवहार परिष्करण विचारधारा (Behaviour ModificationApproach to Motivation)– इस विचारधारा के प्रतिपादक बी. एफ. स्कीनर रहे हैं। यह विचारधारा बतलाती है कि ''व्यक्ति अपने वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया करता है तथा उसके व्यवहार को उसके प्रत्युत्तरों के परिणामों से प्रभावित किया जा सकता है।'' दुसरे शब्दों में वह व्यवहार जिसका परिणाम लाभप्रद होता है। उसके दोहराये जाने की सम्भावना रहती है जबकि जो व्यवहार नकारात्मक अथवा दण्डकारी होता है, उसके दोबारा घटित होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। व्यवहार परिष्करण की प्रक्रिया को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है – विशिष्ट प्रकार के व्यवहारों के लिए विशिष्ट परिणामों की संरचना करते हुए प्रबन्धक वांछित कर्मचारी व्यवहार को अभिप्रेरित कर सकता है। इस सम्बन्ध में प्रबन्धक चार प्रकार के परिणामों का प्रयोग कर सकता है–

(i) सकारात्मक पुनर्बलन (Possitive Reinforcement)– इसके अन्तर्गत श्रेष्ठ निष्पादन करने वाले कर्मचारियों को समारात्मक पुरस्कार जैसे वेतन बोनस मान्यता प्रशंसा पदोन्नति आदि प्रदान करके अभिप्रेरित किया जाता है। पुरस्कार निष्पादन के परिणाम होने चाहिए। इस प्रकार निष्पादन के अधिक श्रेष्ठ होने पर पुरस्कार भी अधिक दिये जाते हैं। इसे पुरस्कार दृष्टिकोण भी कहा जाता है।

(ii) परिवर्जन सीखना (Avoidance Learning) – परिवर्जन सीखना तब घटित होता है जब कर्मचारी अप्रीतिकर परिणामों को टालना अथवा उनसे बचना सीख लेते है। आलोचना करना झिडकना अनुशासनात्मक कार्यवाही करना छँटनी की चेतावनी देना आदि के द्वारा प्रतिक्रिया करता है जो कर्मचारी के लिए सुखद नहीं होती है। इससे कर्मचारी अपनी अवांछनीय व्यवहार (जैसे देरी से आना कार्य न करना दायित्व न निभाना आदि) बन्द कर देता है। इस विधि को भय दृष्टिकोण भी कहते हैं।

(iii) दण्ड (Punishment) – इस विधि में प्रबन्धक दण्ड के द्वारा जैसे पुरस्कारों को छीन कर वेतन में कटौती करके कर्मचारी के अवांछनीय व्यवहार में परिवर्तन लाता है। इस सकारात्मक पुरस्कारों को वापस लिया जा सकता है अथवा नकारात्मक प्रेरणायें (जैसे बोनस न देना, आर्थिक जुर्माना करना) प्रदान की जा सकती है।

(iv) विलापन (Extinction) – विलोपन से तात्पर्य समस्त प्रलोभन एवं प्रेरणाओं को बन्द कर देने से है ताकि अवांछनीय व्यवहार को रोका जा सके।

अभिप्रेरण की अन्य विचारधारायें (Other Theories of Motivation)

कार्य अभिप्रेरण के सम्बन्ध में कुछ विचारधारायें भी महत्वपूर्ण मानी गई हैं जो कि निम्न प्रकार हैं–

1. मैक्ग्रेगर की एक्स एवं वाई विचारधारा ('X' and 'Y' theory of McGregor) – डगलस मैक्ग्रेगर (Douglas McGregor) ने मानव अभिवृत्तियों एवं व्यवहार के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का प्रतिपादन किया है। इनमें एक ऋणात्म मान्यताओं वाली विचारधारा को एक्स तथा सकारात्मक मान्यताओं वाली विचारधारा को वाई विचारधारा के रूप में जाना जाता है। इन विचारधाराओं के आधार पर मानव प्रवृत्ति को समझ कर प्रबन्धक कर्मचारियों को अपने व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित कर सकते है एवं नकारात्मक एक्स विचारधारा– यह विचारधारा मानव व्यवहार के प्रति निराशाजनक दृ ष्टिकोण अपनाती है। यह निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

(i) एक औसत कर्मचारी स्वभावतः आलसी होता है तथा वह जितना सम्भव हो कम से कन कार्य करना चाहता है।

(ii) चूँकि कर्मचारी कार्य से घृणा करते हैं, अतः लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर उनसे प्रयास करवाने हेतु उन्हें धमकाया जाना, नियन्त्रित किया जाना, अथवा दण्डित किया जाना आवश्यक होता है।

(iii) कर्मचारी उत्तरदायित्वों से बचना चाहते हैं तथा औपचारिक निर्देशन में ही कार्य करना पसन्द करते है।

(iv) अधिकांश कर्मचारी कार्य से जुडे घटकों में सुरक्षा को अधिक महत्व देते हैं तथा बहुत कम महत्त्वाकांक्षी होते है।

(v) अधिकांश कर्मचारियों में संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए सृजनात्मक क्षमता बहुत थोडी होती है।

(vi) एक सामान्य कर्मचारी जन्मजात ही स्व–केन्द्रित अथवा स्वार्थी होता है तथा संस्था की आवश्यकताओं से उसका कोई सरोकार नहीं होता है।

(vii) वह स्वभाव से परिवर्तन का विरोधी होता है।

(viii) वह बहुत ही भोला–भाला किन्तु अधिक चतुर नहीं होता है। वह बातूनी नीम–हकीम तथा लोगों को उत्तेजित करने वाला भी होता है।

इस प्रकार यह विचारधारा कर्मचारियों को स्वभाव से ही आलसी एवं कामचोर मानती है। अतः कर्मचारियों के कार्यों पर कडा नियन्त्रण रखकर सख्त अनुशासन में रखकर उनका गहन निरीक्षण करके ही कार्य करने के लिए अभिप्रेरण कर सकते है।

मूल्यांकन – इस विचारधारा की प्रमुख कमियाँ निम्नानुसार हैं–

(i) यह विचारधारा मानव व्यवहार के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाती है। यह मानवीय प्रतिष्ठा पर आघात करती है।

(ii) यह मानवीय आवश्यकताओं व भावनाओं को नकारती है।

(iii) यह साधनों को उपयोग में लाने का उत्तरदायित्व प्रबन्धकों पर डालती है।

(iv) यह भय एवं दण्ड के आधार पर कर्मचारियों से काम लेती है।

(v) यह प्रबन्धकों को निरंकुश बनने की प्रेरणा देती है द्य

(vi) यह व्यक्ति के अन्तर्मन को नकारती है तथा उसके बाह्म स्वरूप पर ही बल देती है।

(vii) यह मनुष्य को केवल आर्थिक मनुष्य ही मानती है।

संक्षेप में यह विचारधारा कर्मचारी को अभिप्रेरित करके काम लेने की सलाह नहीं देती है वरन् उन्हें भय एवं दण्ड के आधार पर कार्य करने के लिए बाध्य करती है।

वाई विचारधारा ('Y' Theory) – वाई विचारधारा उपर्युक्त वर्णित श्एक्सश विचारधारा से बिल्कुल विपरीत है। मैक्ग्रेगर का मत है कि प्रबन्धकों को वाई विचारधारा को अपनाकर कर्मचारियों से कार्य लेना चाहिए। यह विचारधारा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

(i) कर्मचारियों कार्य को खेल अथवा विश्राम की भाँति सहज मानते है। वे कार्य से घृणा नहीं करते। नियन्त्रित परिस्थितियों के अनुसार कार्य कभी सन्तुष्टि का स्त्रोत बन सकता है तो कभी वह दण्ड के समान लगने लगता है।

(ii) केवल भव एवं दण्ड के कार्य करवा कर ही संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। कर्मचारी जिन लक्ष्यों के प्रति समर्पित होते हैं, उनकी प्राप्ति के लिए वे निर्देशित एवं नियन्त्रित होते हैं।

(iii) लक्ष्य के प्रति निष्ठा उपलब्धियों से जुड़े हुए पुरस्कारों का परिणाम है। अधिक पुरस्कार जैसे अहम् की तुष्टि आत्म विकास आदि व्यक्तियों के प्रयासों एवं लक्ष्य प्राप्ति प्रत्यक्ष परिणाम हो सकते हैं।

(iv) उचित परिस्थितियों में एक औसत व्यक्ति न केवल उत्तरदायित्वों का निर्वाह वरन् उन्हे स्वीकार करना भी सीख लेता है। उत्तरदायित्व को टालना महत्वाकांक्षा का आधार तथा सुरक्षा पर बल देना सामान्य रूप से अनुभव के परिणाम हैं ये मानव के जन्मजात नहीं होते हैं।

(v) संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए कल्पनाशीलता सृजनात्मकता कार्यकुशलता के उपयोग की क्षमता केवल कुछ व्यक्तियों में ही नहीं होती है, वरन् समझ व्यक्तियों में व्यापक रूप से पायी जाती है।

(vi) व्यक्तियों में अभिप्रेरण सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आत्म विकास के स्तरों पर घटित नहीं होता है बल्कि इनके साथ–साथ शारीरिक एवं सुरक्षा स्तरों पर भी कर्मचारी अभिप्रेरित होते हैं।

(vii) वर्तमान औद्योगिक दशाओं में औसत मानव की चौद्धिक क्षमताओं का केवल आंशिक उपयोग ही किया जा रहा है।

मूल्यांकन–वाई विचारधारा मानव व्यवहार के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह प्रबन्धकों को कर्मचारियों की क्षमताओं एवं उनके व्यवहार के प्रति सकारात्मकता अपनाने पर जोर देती है। यह संस्थागत एवं वैयक्तिक लक्ष्यों को एक मानती है। कर्मचारियों पर न्यूनतम नियन्त्रण एवं निर्देशन रखने रखने पर बल देती है। इसके प्रमुख गुण इस प्रकार हैं–

(i) यह मानव को विवेकशील एवं सृजनशील मानती है।

(ii) यह मानव के सम्मान एवं महत्व को स्वीकार करती है।

(iii) यह संस्था के एवं वैयक्तिक लक्ष्यों में एकीकरण करती है।

(iv) यह संस्था में जनतांत्रिक व्यवस्था को प्रोत्साहित करती है

(v) यह आत्म नियन्त्रण एवं स्वतः निर्देशन के महत्व को स्वीकार करती है।

(vi) यह मनुष्य के समग्र रूप पर ध्यान देती है। यह उसके आर्थिक पहलू को ही वरन् सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आयाम पर भी विचार करती है।

कुछ लोग इस विचारधारा की आलोचना भी करते हैं। उनके अनुसार यह कोई नवीन विचारधारा नहीं है। यह व्यक्ति पर बहुत अधिक दायित्व डाल देती है। यह उसे स्वविवेक से प्रेरित मानती है। यह व्यक्ति को बहुत अधिक सृजनशील मानती हैं। प्रायः मानव क्षमताओं एवं सृजनशीलता का उपयोग करने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना बहुत कठिन होता है। मैक्ग्रेगर का मत है कि प्रबन्धकों को इन दोनों विचारधाराओं मान्यताओं के आधार पर व्यक्तियों के स्वभाव लक्षणों एवं व्यवहार का अध्ययन अवलोकन करके अभिप्रेरण की उचित विधि अपनानी चाहिए।

अपरिपक्वता परिपक्वता विचारधारा (Immaturity&Maturity Theory) – यह विचारधारा अभिप्रेरण के सम्बन्ध में मानवीय व्यवहार को समझने पर बल देती है। इस विचारधारा के प्रतिपादक क्रिया आर्गेरिस हैं जो संगठन में परिपक्वता की प्रक्रिया पर बल देते हैं। उनका मत है कि परिपक्व कर्मचारी की आवश्यकताओं तथा संगठन की माँगों में एक मूलभूत अन्तर होता है। संगठन में बनने वाली योजनायें नीतियाँ कार्यपद्धतियाँ तथा नियम ऐसे होते हैं जो कर्मचारी को अपररिपक्व दब्बू तथा निर्भर बनाये रखते हैं। संगठन यह माँग करता है कि कर्मचारी केवल आदेशों का पालन करता रहे तथा प्रश्न न उठाये। संक्षेप में संगठन की विस्तृत नीतियाँ एवं नियम कर्मचारी से ऐसे वातावरण में कार्य करने की माँग करते हैं, जहाँ–

(अ) उनका कार्य पर न्यूनतम नियन्त्रण रहे

(इ) वे निष्क्रिय निर्भर एवं अधीनस्थ बने रहें

(ब) उनका समय परिप्रेक्ष्य अल्पकालीन हो

(क) उनकी रूचियाँ बहुत सही एवं व्यवहार सीमित हों

किन्तु एक परिपक्व कर्मचारी उपर्युक्त दशाओं में निम्न तीन प्रकार की प्रतिक्रियायें करता है–

(i) पलायन (Escape) – कर्मचारी कार्य से बचने अनुपस्थित रहने का प्रयास करता है।

(ii) लडना (Fight) – कर्मचारी अनौपचारिक समूहों अथवा श्रम संघों का दबाव बनाकर व्यवस्था से लडता है।

(iii) अनुकुलन (Adapt) – कर्मचारी उदसीनता एवं उपेक्षा की मनोवृत्ति को अपनाकर विद्यमान व्यवस्था के साथ अनुकूलन भी कर सकता है।

क्रिस आर्गीरिस के अनुसार अनुकूलन की प्रतिक्रिया मानसिक स्वास्थ्य के लिए उचित नहीं होती है। उनका मत है कि कर्मचारियों को परिपक्व बनने का अवसर प्रदान करके अधिक कार्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसके लिए प्रबन्धकों को निम्न कार्य करने चाहिए–

(अ) कर्मचारियों को स्वतन्त्र एवं आत्म निर्भर बनाना।

(इ) कर्मचारियों की रूचियों को गहन एवं विविध बनाना।

(ब) उनके समय परिप्रेक्ष्य को दीर्घकालीन करना।

(स) उन्हें अपने स्व के प्रति जाग्रत करना।

(द) उन्हें विविध से व्यवहार करने का अवसर देना।

(ग) उन्हें समान अथवा उच्च पदों पर आने के लिए अवसर देना।

उर्विक की जैड विचारधारा (Theory of Urwick) – इस विचारधारा का प्रतिपादन लिण्डाल एफ. उर्विक ने किया था। यह प्रबन्ध के क्षेत्र में मानवीय व्यवहार को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझने निर्देशित करने एवं नियन्त्रित करने में सहायक होती हैं। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि प्रत्येक मानव सामाजिक प्रणाली होने के साथ–साथ उपभोक्ता भी होता है चाहे उसका कार्य एवं व्यवसाय कुछ भी क्यों न हो। यह विचारधारा व्यवसाय को विपणन के रूप में देखती है। इसके अनुसार मानव की आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं का निर्धारण समाज में रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों की इच्छा के अनुसार होता है। अतः कर्मचारियों को अभिप्रेरित करते समय उनकी सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान दिया जाना चाहिए। सामान्यतः कर्मचारियों द्वारा परिवर्तन का विरोध तभी किया जाता

है जब उनकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ती है। सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से उत्पादन में वृद्धि होती हैं तथा मानवीय सम्बन्धों में सुधार होता है। सामाजिक आवश्यकताओं के अन्तर्गत समूह प्रेरणाओं उत्तम कार्य की दशाओं,प्रबन्ध एवं लाभों में सहभागिता सामाजिक प्रतिष्ठा उन्नति के अवसर आदि को सम्मिलित किया जाता है। उच्च मनोबल के लिए प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था विश्वास शिकायतों का सार समाधान उपयोगी सुझावों को प्रोत्साहन आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिनमें प्रबन्धकों को ध्यान देना चाहिए।

अभिप्रेरण की एकात्मक विचारधारा (Monistix Theory of Motivation) – इस विचारधारा मान्यता यह है कि व्यक्ति केवल एक ही लक्ष्य– अधिकाधिक मुद्रा के लिए कार्य करते हैं। मौद्रिक प्राप्ति को ही मानवीय व्यवहार का आधार मानती हैं। इसकी प्रमुख मान्यताएँ निम्न कार हैं–

(i) यह व्यक्ति को आर्थिक मनुष्य मानती है जिसका मतलब यह है कि व्यक्ति केवल मौद्रिक लाभ के लिए ही कार्य करता है।

(ii) मौद्रिक पारितोषणों की वृद्धि से व्यक्ति के कार्य प्रयासों में भी वृद्धि हो जाती है।

(iii) समूह प्रेरणा की तुलना में व्यक्तिगत प्रेरणा अधिक प्रभावी सिद्ध होती है। (

(iv) पारिश्रमिक का शीघ्र भुगतान भी कर्मचारियों को अधिक कार्य करने के लिए अग्रेषित करताहै।

(v) अतिरिक्त उत्पादन का जितना अधिक पारितोषिक दिया जायेगा उतना ही अधिक कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

मूल्यांकन – अनेक विद्वानों का मत है कि मनुष्य केवल मुद्रा प्राप्ति के लिए ही कार्य नहीं करता है, अपितु कई अन्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का भी प्रयास करता हैं। यद्यपि कई विचारकों का यह मत हैं कि ''मुद्रा एक शक्तिशाली अभिप्रेरक है तथा अन्य आवश्यकताओं को भी मुद्रा के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है। मुद्रा के रूप में अभिप्रेरण को मापना भी सरल होता है तथा अर्थशास्त्र में आर्थिक व्यक्ति का ही अध्ययन किया जाता है, लोक हितैषी अथवा अथवा परोपकारी का नहीं।'' आधुनिक उद्योगों में एकात्मक अभिप्रेरण का महत्व कम होता जा रहा है। क्योंकि व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा आत्म सन्तुष्टि अहम् पूर्ति की आवश्यकतायें महत्वपूर्ण होती जा रहीं है। फिर भी मौद्रिक अभिप्रेरण को बिल्कुल महत्वहीन नहीं समझा जा सकता है तथा जब तक मुद्रा आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनी रहेगी व्यक्ति अधिक मुद्रा के लिए प्रयास करता रहेगा।

अभिप्रेरण की बहुलवादी विचारधारा (Pluralistic Theory of Motivation)– आधुनिक मनुष्य का व्यक्तित्व बहुआयामी होता है उसका व्यवहार बहुलक्ष्य केन्द्रित होता है तथा इसी प्रकार वह कई आवश्यकताओं से अभिप्रेरित होता है मनोवैज्ञानिकों तथा समाज आवश्यकताओं जीवन निर्वाह, सामाजिक पद स्थिति, आत्म–सम्मान, आत्म–विकास एवं आत्म–पूर्णता आदि की पूर्ति के लिए कार्य करता है। अतः व्यक्ति को मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों प्रकार की अभिप्रेरणाओं के द्वारा प्रेरित किया जा सकता है।

मूल्यांकन – आधुनिक युग में व्यक्ति की अनेक आवश्यकतायें उत्पन्न हो गई है। अतः बहुलवादी विचारधारा ज्यादा सार्थक प्रतीत होती है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह विचारधारा एकात्मक विचारधारा की विरोधी हैं। वास्तव में यह विचारधारा तो उसकी पूरक है क्योंकि अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति में मुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

भय एवं दण्ड विचारधारा (Fear and Punishment Theory) – यह परम्परागत विचारधारा है तथा अभिप्रेरण के ऋणात्मक स्वरूप पर आधारित है। यह व्यक्तियों को धमकी देकर भव दिखाकर अथवा के बल पर कार्य लेने पर जोर देती है। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि व्यक्ति धन प्राप्ति के लिए ही कार्य करते हैं तथा कार्य से हटाये जाने के भय से ही वे अच्छा कार्य करने लग जायेंगे। इस विचारधारा के समर्थक ष्भय बिन प्रीति न होयष् में विश्वास करते हैं। वे ष्या तो काम करो या चले जाओंष् का मूल मंत्र रखते हैं। यह विचारधारा औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में ही उचित थी जब व्यक्तियों के पास रोजगार नहीं था। श्रमिकों की स्थिति दयनीय थी और श्रम संघों व सेवा कानूनों का अभाव था। आज भी यह विचारधारा प्रासंगिक बनी हुई है, यद्यपि कई द्वान आज के स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक समाज में इस विचारधारा को व्यावहारिक नहीं मानते हैं। इससे कर्मचारियों की क्षमताओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा मनोबल में कमी आती है।

पुरस्कार विचारधारा (Reward Theory) – यह विचारधारा इस मत पर आधारित है कि अच्छे पुरस्कार, श्रेष्ठ कार्य की दशायें, मौद्रिक एवं अमौद्रिक लाभ कर्मचारियों को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट बनाते हैं तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं। एफ. डब्ल्यू. टेलर इस विचारधारा से सम्बन्धित रहे हैं। उनका विचार था कि व्यक्ति उसी सीमा तक अपना कार्य दक्षतापूर्वक करता है जिस सीमा तक उसे उचित प्रतिफल प्राप्त होता है। व्यक्ति जितना अधिक प्रतिफल प्राप्त होगा वह उतना ही श्रम करेगा। इसके लिए टेलर ने विभेदात्मक मजदूरी पद्धति के अनुसार मजदूरी का भुगतान करने का सुझाव दिया था। अधिक पुरस्कार प्रदान करके संगठन में अच्छे कार्य वातावरण का निर्माण किया जा सकता है तथा श्रम आवर्तन को कम किया जा सकता है। कुछ विद्वान यह भी मानते है कि धन व्यक्ति को केवल सन्तुष्टि प्रदान कर सकता है उसे अभिप्रेरणा प्रदान नहीं कर सकता है। पीटर ड्रकर का मत है कि ष्मौद्रिक पुरस्कारों से सन्तुष्टि अभिप्रेरण के लिए पर्याप्त नहीं है।

कैरट तथा स्टिक विचारधारा (Carrot and Stick Theory) – विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि लोगों की कार्यक्षमता के अनुसार ही उन्हें पुरस्कार या दण्ड दिया जाए तो उनकों अधिक कार्य करने के लिए अभिप्रेरित किया जा सकता है। इस विचारधारा के अनुसार यदि कोई कर्मचारी सामान्य कार्यक्षमता से अधिक कार्यक्षमता अर्जित कर लेता है तो उसे विशेष पुरस्कार प्रदान किया जाना चाहिए और यदि उससे कार्यक्षमता सामान्य से कम है तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। इस प्रकार यह विचारधारा दण्ड एवं पुरस्कार को व्यक्ति के निष्पादन के साथ जोड देती है। यह पुरस्कारों को शर्तयुक्त बना देती है। अनेक अनुसंधानों से भी यह स्पष्ट हो चुका है कि पुरस्कार एवं दण्ड दोनों एक साथ प्रयोग करके लोगों का अभिप्रेरित किया जा सकता है। यह विचारधारा उस समय तक ही प्रभावी सिद्ध होती है जब तक कि एक कर्मचारी अपनी जीवन रक्षक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। मैक्ग्रेगर कहना है कि ष्यह विचारधारा एक व्यक्ति के पर्याप्त जीवन स्तर तक पहुँच जाने के बाद कार्य करती है क्योंकि तब व्यक्ति मुख्यतः उच्चतम आवश्यकताओं से अभिप्रेकित होता है। बर्नार्ड ने भी इस मत का समर्थन किया है और

लिखा है कि प्रबन्धक सदैव धर्मात्मक अभिप्रेरणाओं का ही प्रयोग करते है। वे दण्ड का प्रयोग के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए ही करते है।[8] यह सच है कि वित्तीय पुरस्कार उन लोगों को अभिप्रेरित करने में असफल रहते हैं जिनके पास जीवन यापन के लिए पर्याप्त धन सुविधाएँ होती है।

भागीदारी विचारधारा (Participative Theory) – मानव व्यवहार पर किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि केवल मौद्रिक पुरस्कार ही कर्मचारियों को अभिप्रेरित नहीं करतेहैं। यह विचारधारा मानती है कि ''व्यक्ति के कार्य करने का ढंग भी उसे अभिप्रेरित कर सकता है।'' प्रत्येक व्यक्ति में अच्छा कार्य करने की भावना होती है, सुझाव देने कि रखने की आकांक्षा होती है तथा वह स्वयं अपने कार्य की विधि एवं योजना निर्धारित कर मन में उत्सुक होता है। वह लक्ष्यों के निर्धारण में भाग लेना चाहता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति मान्यता, सम्मान, कार्य–सन्तुष्टि तथा संगठन के महत्वपूर्ण कार्यो में सहयोग प्रदान करके कार्य के लिए अभिप्रेरित होता है। कर्मचारियों को प्रबन्ध के सभी स्तरों पर लक्ष्यों का कार्य योजनाओं कार्यविधियों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में सहभागी बनाने से संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति सरल हो जाती है। कर्मचारी भी प्रबन्ध के कार्यो में सहभागी बनकर अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। वह अपने को संगठन का सदस्य मानता है तथा उसमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। जिससे वह स्वतः अभिप्रेरित होता है। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि कर्मचारी केवल धन ही नहीं चाहता है अपितु वह संस्था में अपनत्व की भावना का अनुभव करना चाहता है। वह अपनी सृजनशीलता एवं विचार शक्ति की अभिव्यक्ति चाहता है। उसे संगठन में मशीन का एक पुर्जा नहीं माना जाना चाहिए। सहभागिता की विचारधारा कर्मचारी की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को तृप्त कर उसे अभिप्रेरित करती है। भागीदारी विचारधारा प्रबन्ध की सफलता को सुनिश्चित करती है। मैक्ग्रेगर के अनुसार ष्प्रबन्धक एक शिक्षक परामर्शदाता एवं सहकर्मी होता है लकिन वह बहुत ही कम दशाओं में एक अधिकारी होता है।

कुशाग्र वातावरण की विचारधारा (Theory of Intelligent Environment)– कुशाग्र वातावरण की विचारधारा पर अनेक विचारकों जैसे डेविड क्रेच मेरियन डायमन्ड मार्क रोजेवेग आदि ने कार्य किया है। इसके अनुसार कुशाग्र वातावरण भी व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। व्यक्ति के जीवन का प्रारम्भिक वातावरण भी उसकी उत्प्रेरणा दायित्व भावना विचार प्रक्रिया का विकास होता है। यह वातावरण कार्य करने के लिए प्रेरणास्पद सिद्ध होता है। अच्छे संगठनात्मक वातावरण में कर्मचारी के कार्य कौशल योग्यता एवं व्यक्तित्व का विकास होने में सहायता मिलती है तथा वह समस्याओं के समाधान में रूचि लेने लगता है। डेविड क्रेच का कथन है कि एक कुशाग्र वातावरण में चतुर व्यक्तियों का विकास सम्भव होता है।

अभिप्रेरण के साधन एवं विधियाँ / तकनीकें (MeansAnd Methods of Motivation)

व्यवहार में अभिप्रेरण की अनेक विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। उन्हें दो श्रेणियों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है –

वित्तीय तकनीकें (Financial Techniques) – वित्तीय तकनीकों का सम्बन्ध के लाभ से होता है। मुद्रा अभिप्रेरण का एक आधारभूत साधन है। विकसित एवं विकासशील देशों में समान रूप से इन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। वित्त मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करता है, वरन् उसे एक उच्च सामाजिक स्थिति भी प्रदान करता है। वित्तीय तकनीकों में उच्च वेतन बोनस भत्ते लाभ में हिस्सा पेन्शन व प्रेच्युइटी प्रॉवीडेन्ट फन्ड एवं अन्य मौद्रिक लाभ शामिल है। वित्तीय लाभ जीवन निर्वाह एवं अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण होते है। अतः वित्तीय तकनीकें प्राथमिक होती है।

अवित्तीय तकनीकें (Non Financial Techniques) – अवित्तीय तकनीकों का प्रयोग व्यक्ति की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।

आधुनिक युग में शिक्षा ज्ञान व परिपक्वता में वृद्धि के कारण अवित्तीय तकनीकों का महत्व बढा है। कुछ प्रमुख वित्तीय तकनीकें इस प्रकार हैं–

1. पद (Status)– संगठन संरचना में व्यक्ति का अच्छा पद एवं स्थिति उसे अधिक कार्य के लिए अभिप्रेरित करती है। अच्छा पद व्यक्ति को प्रतिष्ठा एवं सम्मान देने के साथ–साथ उसमें आशा, महत्वाकांक्षा एवं उपलब्धि का भाव उत्पन्न करता है। योग्य व्यक्ति को उचित पद प्रदान करके उसकी निराशा व कुण्ठा को समाप्त किया जा सकता है तथा उसकी भूमिका को सक्रिय बनाया जा सकता है।

2. मान्यता (Recognition)– अच्छे कार्यो की प्रशंसा तथा उपलब्धियों को प्रदान करके व्यक्ति के अहं की सन्तुष्टि की जा सकती है। अतः प्रबन्धक अपने अधीन उपलब्धियों विचारों, सुझावों, श्रेष्ठ निष्पादन व कार्य गुणों को मान्यता प्रदान कर अभिप्रेरित कर सकते हैं।

3. सुनिश्चित लक्ष्य (Well-defined Goals) – प्रबन्धक सुनिश्चित लक्ष्यों व उद्देश्यों का निर्धारण करके कर्मचारियों को अभिप्रेरित कर सकते हैं। लक्ष्यों के निर्धारण से कार्य विधियों तरीकों व दृष्टिकोणों से निश्चितता आ जाती है, जिससे अभिप्रेरित होते हैं।

4. अधिकार प्रत्यायोजन (Delegation ofAuthority)– अधीनस्थ कर्मचारी अधिकार सौंप कर तथा उनके दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण करके उनकी कार्यकुशलता उत्साह एवं लगन में वृद्धि की जा सकती है। डगलस बेसिल के अनुसार ''प्रबन्धकों की अच्छी कार्यकुशलता के लिए आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने एवं अभिप्रेरणो एवं प्रत्यायोजन एक अच्छी विधि है।''

5. सुरक्षा (Security) – सेवा सुरक्षा प्रदान करके भी कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। हेनरी मूरे ने तीन प्रकार की सुरक्षायें बतायी हैं– रोजगार सुरक्षा, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा द्य अतः नियोक्ता कर्मचारियों को ये सुरक्षाएँ प्रदान करके संगठन निष्ठा सेवा भावना व अपनत्व को अभिप्रेरित कर सकता है।

6. कार्य विस्तार (Job Enlargement) – कार्य विस्तार के अन्तर्गत कार्य को प्रकृति का बनाकर इसकी नीरसता को समाप्त किया जाता है। इससे कार्य केवल थकान ऊब व निराशा समाप्त हो जाती है। बल्कि कार्य में एक रूचि एवं चुनौती उत्पन्न होती है।

7. कार्य सम्पन्नता (Job Enrichment) – कार्य सम्पन्नता के द्वारा कार्य चुनौती महत्ता एवं उपलब्धि का भाव उत्पन्न किया जाता है। इसके द्वारा कर्मचारी उत्तरदायित्वों व चुनौतियों को विस्तृत किया जाता है। इसमें कार्य के निष्पादन के साथ उसके नियोजन व नियन्त्रण आदि पहलुओं को भी सौंप दिया जाता है।

8. सहभागिता (Participation) – संस्था के महत्वपूर्ण निर्णयों योजनाओं कार्यक्रमों में कर्मचारियों को भागीदार बनाकर उनको अभिप्रेरत किया जा सकता है सहभागिता से कर्मचारियों में आत्म विश्वास व सन्तुष्टि व सम्मान की भावना उत्पन्न होती है वे संस्था के प्रति अधिक जागरूक उत्तरदायी एवं सृजनशील बन जाते है।

9. स्वतन्त्रता (Freedom) – व्यक्ति को कार्य में स्वतन्त्रता प्रदान करके अधिक ढंग से अभिप्रेरित किया जा सकता है। कार्य स्वतन्त्रता से व्यक्ति की निष्पादन भावना मानसिक सन्तुष्टि में वृद्धि की जा सकती है। इससे कर्मचारी में दायित्व पहलपन नेतृत्व जन्म होता है। इसके विपरीत हस्तक्षेप व नियन्त्रण से व्यक्ति में हीनता व अतृप्ति होती है।

10. नेतृत्व (Leadership) – प्रबन्धक कर्मचारियों को उचित नेतृत्व व प्रतिनिधि प्रदान करके उनके विश्वास एवं प्रेम को जीत सकते हैं। जो प्रबन्धक कर्मचारियों को मार्गदर्शन प्रदानकरते हैं उनकी कठिनाइयों को हल करते हैं तथा कार्य का उचित वातावरण बनाते हैं वे कर्मचारियों को अधिक उत्प्रेरित कर सकते हैं।

11. विकास के अवसर (Growth Opportunities) – प्रत्येक व्यक्ति विकास एवं उन्नति के अवसर चाहता है। इससे वह अपनी योग्यताओं कौशल एवं सम्भावनाओं को विकसित कर सकता है। अतः संगठन में पदोन्नति प्रशिक्षण शिक्षा व अन्य विकास की योजनाओं के द्वारा कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

12. कार्य में गर्व (Pride in the Job)– प्रत्येक व्यक्ति प्रतिष्ठित संस्थाओं में गौरवपूर्ण कार्य करना चाहता है। संगठन की ख्याति व छवि से व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा पर प्रभाव पडता है। अतः संस्था की प्रतिष्ठा में वृद्धि के साथ–साथ उसके कार्यो को भी गौरवपूर्ण बनाकर व्यक्ति को संगठन में रूके रहने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

13. प्रतियोगितायें (Competitition) – प्रतिस्पर्धा में जीना मनुष्य का स्वभाव है। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से व्यक्ति की क्षमताओं व सृजनात्मकता को चुनौती मिलती है। प्रतियोगिता भावना से व्यक्ति श्रेष्ठ निष्पादन के लिए प्रेरित होता है।

14. मानवीय सम्बन्ध (Human Relations) – मानवीय व्यवहार कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने का स्वयं में एक महत्वपूर्ण साधन है। कर्मचारियों को संस्था के सदस्य व हिस्सेदार मानकर उचित सम्मान देने तथा उनकी भावनाओं का आदर करने से वे स्वतः ही अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित हो सकते है।

15. परिणाम प्रबन्ध (Results Management)– प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को परिणामों के प्रति सजग रखकर भी उन्हें अभिप्रेरित कर सकते हैं। अतः अधीनस्थों द्वारा अपने लक्ष्य निर्धारित करने व स्वयं मूल्यांकन करने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

16. प्रभावपूर्ण समीक्षा (Effective Criticisin)– प्रबन्धक अपने अधीनस्थों की समीक्षा व आलोचना करने में सकारात्मक दृष्टिकोण रखकर भी उन्हें अपने व्यवहार व निष्पादन में सुधार करने के लिए अभिप्रेरित कर सकते है।

अन्तर्वैक्तिक एवं सगठनात्मक सम्प्रेषण

प्रबन्धक वस्तुओं के साथ नहीं वरन् ष्वस्तुओं के सम्बन्ध में सूचक के साथ कार्य करते हैं। सम्प्रेषण प्रबन्ध के आधारभूत कार्य ही नहीं बल्कि प्रबन्ध की प्रथम समस्या भी हैं। चेस्टर बर्नार्ड लिखते है–''प्रबन्धक का प्रथम कार्य एक सम्प्रेषण प्रणाली का विकास करना तथा उसे बनाये रखना है।'' जेम्स गिबसन का कथन है कि ''प्रत्येक प्रबन्धक को एक सम्प्रेषण चाहिए।'' वास्तव में प्रबन्धक समय का 90 प्रतिशत अंश सम्प्रेषण करने में ही व्यतीत करते है। उनका दिन– आदेशों निर्देशों वार्तालाप निवेदन विवेचन आज्ञा सभाओं अफवाहों से भरा होता है।

सम्प्रेषण प्रत्येक संगठन के अस्तित्व का आधार है। डेनियत कॉट्ज एवे रॉबर्ट लिखते हैं कि ''सम्प्रेषण प्रत्येक सामाजिक प्रणाली एवं संगठन का सार है।'' आज प्रबन्ध के ष्व्यक्ति सचेतन दृष्टिकोण के कारण सम्प्रेषण का महत्व और भी बढ़ गया है। अल्फ्रेड कोर्जीबस्की के अनुसार ''आज प्रबन्ध में प्रतीको का संसार अर्थात् संकेतों, लेबल, भावनाओं, अनुमानों, सारांशों के विनियम का संसार महत्वपूर्ण हो गया है।''

सम्प्रेषण का अर्थ एवं परिभाषा (MeaningAnd Definition of Communication)

सम्प्रेषण से तात्पर्य दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों विचारों अनुमानों भावनाओं व संवेगों के पारस्परिक आदान प्रदान से है। सम्प्रेषण साधनों शब्दों संकेतों वाणी व्यवहार आदि माध्यमो से संदेशों का समागम तथा विचारों सम्मतियों का विनियम है। चार्ल्स ई. रेडफील्ड के अनुसार सम्प्रेषण से आशय मानवीय तथ्यों एवं विचारों के पारस्परिक विनिमय से है न कि टेलीफोन तार रेडियों आदि तकनीकी साधनों से अंग्रेजी का Communication शब्द लेटिन के शब्द 'Communis' से बना है जिसका अर्थ होता है श्समरूपश (Common)। सम्प्रेषण में प्रेषक संदेश प्राप्तकर्ता के साथ समरूपता अर्थात् एक सा अर्थ बोध स्थापित करने का प्रयास करता, है। इस प्रकार सम्प्रेषण दो पक्षों के मध्य किसी विषय के सम्बन्ध में एक सी समझ उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। डेनियल कॉट्ज एवं कॉन के अनुसार ''सम्प्रेषण सूचना का विनिमय एवं अर्थ का संचरण।'' अतः सम्प्रेषण में संदेश के साथ–साथ समझ का भी विनिमय होना आवश्यक है।

ऑगडेन एवं रिचर्ड्स ने अपनी पुस्तक में सम्प्रेषण के निम्न तीन अंग बताये हैं तथा इसे 'अर्थ का त्रिकोण' कहा है–

1. प्रेषक– इसमें विचारों संवेगों अर्थनिर्णयों व्याख्याओं आदि को शामिल किया जाता है।

2. विषय वस्तु –इसमें घटनाएँ, वस्तुएँ, अथवा कोई विषय सम्मिलित होता है।

3. चिन्ह एवं प्रतीक –इसके अन्तर्गत मौखिक एवं अमौखिक प्रतींको शब्द वाणी अक्षर संकेत हावभाव शरीर मुद्राएँ आचरण भाषा आदि शामिल हैं जिनके द्वारा संदेश का प्रेषण

किया जाता है। इस प्रकार सम्प्रेषण किसी विषय या वस्तु के सम्बन्ध में शब्दों प्रतीकों या वाणी के माध्यम से मानवीय विचारों सूचनाओं व समझ का विनिमय है। परिभाषाएँ सम्प्रेषण की कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं–

गिबसन एवं इवेन्सविच के अनुसार ''समान प्रतीकों के माध्यम से सूचना व समझ का संचारण ही सम्प्रेषण है।''

मैर्गिनसन के शब्दों में ''सम्प्रेषण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को विचारों अथवा एजेन्सियों का प्रतीकात्मक रूप से प्रयोग करते हुए इनके द्वारा दूसरे व्यक्ति के संज्ञान को सचेत या अचेतन रूप से प्रभावित करता है।''

थियोडोर हर्बर्ट (Theodore Herbert) के अनुसार ''सम्प्रेषण एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति वस्तुओं अथवा एजेन्सियों का प्रतीकात्मक रूप से प्रयोग करते हुए इनके द्वारा दूसरे व्यक्ति के संज्ञान को सचेत या अचेतन रूप से प्रभावित करता है।''

मैक्फारलैंड (McFarland) के शब्दों में ''सम्प्रेषण व्यक्तियों के मध्य अर्थपूर्ण अन्तर्व्यवहार की प्रक्रिया है।''

कीथ डेविस (Keith Davis) के अनुसार ''सम्प्रेषण प्रक्रिया है जिसमें संन्देश को एक दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।''

लुइस ए. ऐलन (LouisA-Allen) के अनुसार ''सम्प्रेषण में वे सभी चीजें शामिल हैं जिनके माध्यम से एक व्यक्ति अपनी बात दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में डालता है। यह अर्थ का पुल है। इसके अन्तर्गत कहने सुनने और समझने की व्यस्थित तथा निरन्तर प्रक्रिया सम्मिलित होती है।''

न्यूमेन तथा समर (Newman and Summer) के अनुसार ''सम्प्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों में मध्य तथ्यों विचारों सम्मतियों अथवा भवनाओं का विनिमय है।''

विलियम ग्लकू (William Glueck) ने संगठनात्मक सम्प्रेषण की परिभाषा देते हुये लिखा है कि ''संगठनात्मक सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबन्धक संगठन के व्यक्तियों को तथा संगठन के बाहर वांछनीय व्यक्तियों व संस्थाओं को व्यवस्थित रूप सूचना देते हैं तथा अर्थ का संचरण करते है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि सम्प्रेषण एक सतत् एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत दो या अधिक व्यक्ति अपने विचारों भावनाओं सूचनाओं व तथ्यों के साथ–साथ समान अर्थ व समझ का विनिमय करते हैं। प्रबन्धकीय सम्प्रेषण से तात्पर्य संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति तथा कार्यो के निष्पादन हेतु प्रबन्धकों व अधीनस्थों के आदेशों निर्देशों व प्रतिवदेन के रूप में होने वाले सूचनाओं अर्थ बोध संज्ञान समझ के आपसी आदान प्रदान से है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है। जब तक कि आपसी अवरोधों अर्थ भेद संदेहों व आपत्तियों को दूर करके आपसी समझसम्पति उत्पन्न नहीं कर ली जाती है।

सम्प्रेषण की प्रकृति या विशेषताएँ

सम्प्रेषण की प्रकृति को उसकी निम्न विशेषताओं द्वारा समझा जा सकता है –

1. सम्प्रेषण सूचनाओं के साथ–साथ भावनाओं तर्को संज्ञान तथा आपसी समझ आदान–प्रदान की क्रिया है।

2. यह मानवीय अन्तर्व्यवहार की एक व्यवस्थित एवं गतिशील प्रक्रिया है।

3. यह विचारों सम्मतियों शंकाओं संबोध एवं अवबोध का समागम एवं विनिमय है।

4. यह दो मस्तिष्क के बीच एक समझ का पुल है।

5. कार्टियर एवं हारवुड के अनुसार ''सम्प्रेषण स्मरण शक्तियों की प्रतिध्वनि,प्रत्युत्तर अथवा दोहराने के लिए एक प्रक्रिया है।

6. यह मानवीय महलुओं के मध्य अर्थपूर्ण बातों का विनिमय है।

7. सम्प्रेषण मौखिक लिखित अथवा सांकेतिक हो सकता है।

8. यह बहु आयामी है– अर्थात् अधोगामी ऊर्ध्वगामी, सम तल, आन्तरिक अथवा बाह्म किसी भी प्रकार का हो सकता है।

9. सम्प्रेषण केवल संदेश देने की योग्यता पर ही नहीं वरन् सुनने की योग्यता पर भी निर्भर करता है।

10. सम्प्रेषण प्रबन्धकीय कार्यो का आधार तथा संगठन के अस्तित्व का सारतत्व है।

11. सम्प्रेषण प्रायः प्रशासकीय होता है, क्योंकि संगठन में अधिकांश संदेशों का आदान–प्रदान प्रशासकीय दृष्टि से ही होता हैं।

12. यह वह ष्प्रक्रियाश है जो व्यक्तियों के भीतर घटित होती है।

13. सम्प्रेषण एक सम्बद्धकारी प्रक्रिया है। यह एक व्यवहारत्मक एवं अन्तर्क्रियात्मक कार्य है।

14. सम्प्रेषण विचारों का प्रतिरोपण है।

15. सम्प्रेषण में गतैक्य का होना आवश्यक नहीं किन्तु एक सी समझ एवं अर्थ का होना आवश्यक है।

16. सम्प्रेषण व्यवहारों से सम्बन्धित है यह एक वैयक्तिक प्रक्रिया है।

सम्प्रेषण के तत्व

सम्प्रेषण को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। यह प्रक्रिया अनेक तत्वों से मिलकर बनती है। डेविड के बलों के अनुसार सम्प्रेषण के प्रमुख तत्व हैं–

1. स्त्रोत –सम्प्रेषण के लिए किसी स्त्रोत का होना आवश्यक होता है जहाँ से विचार आवश्यकता चिन्तन धारणा अनुभव सूचना या अन्य कोई संन्देश प्रवाहित होता है। प्रत्येक सम्प्रेषण का प्रायः एक मानव स्त्रोत होता है। इसे सन्देश प्रेषक भी कहते है।

2. लिपिबद्धकरण –सन्देश या सूचना अदृश्य एवं अमूर्त होती है। अतः उसे स्वरूप प्रदान करने के लिए लिपिबद्ध क्रिया आवश्यक है। प्रायः मानव स्त्रोत अपने मानसिक अवबोध एवं संज्ञान को किसी संकेत पद्धति में अनुभूति करता है। यह वह अर्थ होता है। जिसका वह संचरण करना चाहता है। मानसिक अवधारणाओं को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण संकेतक है। किसी भी संन्देश को लिपिबद्ध करने में शरीर की भाषा प्रयुक्त की जाती है। वाणी हाव–भाव मुख मुद्रा हाथ आदि के माध्यम से सन्देश को कूटबद्ध किया जाता है। व्यवसाय में आजकल कई संन्देशों को कम्प्यूटर भाषा के द्वारा लिपिबद्ध किया जाता है। स्त्रोत एवं लिपिबद्धकर्ता को कई घटक प्रभावित करते है। जैसे सम्प्रेषण कौशल अभिवृत्तियाँ अनुभव व ज्ञान वातावरणीय एवं सामाजिक सांस्कृतिक आदि।

3. सन्देश –स्त्रोत (व्यक्ति) के द्वारा श्अर्थश को संदेश के रूप में लिपिक किया जाता है। संदेश सम्प्रेषण की विषय वस्तु है। यह किसी विचार सूचना संवाद के रूप में होता है जो संदेश प्राप्तकर्ता को भेजा जाता है। संदेश या संवाद से वह अर्थ स्पष्ट होना चाहिए जो प्रेषक के मस्तिष्क में है। संदेश उस अर्थ को दर्शाता है जो प्रेषक भेजना चाहता है।

4. माध्यम –माध्यम वह कडी मार्ग या धारा है जो स्त्रोत तथा संदेश प्राप्तकर्ता को जोडती है। मनुष्य की पाँच बोध इन्द्रियाँ उसके सम्प्रेषण माध्यम है। दृश्य, वाणी, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि संदेश के माध्यम हैं। हवा, जो आवाज की लहरों को ले जाती हैं, यह भी एक माध्यम है।

5. साधन (Means) – सम्प्रेषण में कई लिखित एवं मौखिक साधनों जैसे टेलीफोन टेलीविजन रेडियों स्वर संवाद शारीरिक मुद्राएँ चित्र फिल्म टेपरिकॉर्डर आदि प्रयोग किया जाता है।

6. संदेश प्राप्तकर्ता (Receiver) – यह संदेश ग्रहण करता है। कुछ संदेशों को प्राप्त करने वाले निश्चित एवं विशिष्ट व्यक्ति होते है जैसे कर्मचारी, व्यापारी, ग्राहक, उपभोक्ता आदि। संदेश प्राप्तकर्ता एक समूह भी हो सकता है।

7. व्याख्या करना अथवा कूट खोलना (Interpreting or Decoding)– प्राप्तकर्ता संदेश प्राप्त होने के पश्चात् उसकी व्याख्या करता है। वह शब्दों संकेतों आदि के द्वारा उसका अर्थ स्पष्ट करता है। कई बार भाषा या अन्य गुप्त संकेतों का अनुभव करने वाला व्यक्ति दूसरा होता है। किन्तु फिर भी संदेश का षविशिष्ट या वैयक्तिक अर्थष् प्राप्तकर्ता ही लगता है अर्थात् वह संदेश का पुनः अनुवाद करता है।

8. अर्थ का आशय (Meaning)– सम्प्रेषण का आशय संदेश को उसी अर्थ में समझने से हैं वाले का होता है। संदेश प्रेषक व प्राप्तकर्ता के मस्तिष्क में एक अर्थ होने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों वह भाषा व प्रतीक समझते हों तथा उनका एक सा अर्थ गढ़ते हों। अर्थ की एकरूपता सम्प्रेषण का सारतत्व है।

9. प्रतिक्रिया (Reaction) – वास्तव में सम्प्रेषण का उद्देश्य केवल सूचना देना ही नहीं होता है। अपितु व्यवसाय इसके अनुसार कार्यवाही करने लिए प्रेरित करना होता हैं। संदेश प्राप्तकर्ता द्वारा कोई कार्यवाही करना संदेश के प्रति उसकी प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। संदेश प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। संदेश प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया संदेश की भाषा उसे दिये जाने वाले समय संदेश देते समय प्रेषक का आचरण एवं व्यवहार संदेशका उद्देश्य आदि बातों पर निर्भर करती है। सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए प्रतिक्रिया का अनुमानकरना आवश्यक होता है।

10. प्रतिपुष्टि (Feedback)– प्रतिपुष्टि संदेश प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया को वापस संदेश प्रेषक के पास पहुँचाने की क्रिया है। संदेश प्राप्त करने तथा उसकी व्याख्या करने के पश्चात् व्यक्ति स्वयं स्त्रोत बन जाता है, क्योंकि वह मूल स्त्रोत के पास अपनी प्रतिक्रिया भिजवाता है। प्रतिपुष्टि के द्वारा ही संदेश प्रेषक को अपने संदेश की प्रगति कार्यवाही अथवा इसके विरूद्ध आपत्तियों का ज्ञान होता है। इससे वह अपने भावी संदेशो में सुधार कर सकता है।

11. विकृति या कोलाहल (Noise) – विकृति एक महत्वपूर्ण तत्व है जो संदेश की शुद्धता एवं विश्वसनीयता को कम कर देता है। विकृति उत्पन्न हो जाने की संभावना प्रत्येक स्तर पर होती है प्रेषक द्वारा संदेश का उचित निर्माण न करने अर्थात् संदेश को समझने व वर्णन करने में भूल करने सम्प्रेषण प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होने संदेश की गलत व्याख्या या विवेचन किये जाने के कारण विकृति उत्पन्न हो जाती है। प्रयुक्त माध्यम व साधनों की तकनीकी खराबी भी सम्प्रेषण को विकृत बना देती है।

सम्प्रेषण के उद्देश्य (Objectivesof Communication)

व्यापक रूप से सम्प्रेषण का उद्देश्य संगठन में परिवर्तन को लागू करना कार्यवाही करना तथा संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों के व्यवहार को अभिप्रेरित करना होता हैं। विशिष्ट रूप से सम्प्रेषण के निम्न उद्देश्य होते हैं–

1. उपक्रम के लक्ष्यों के निर्धारित तथा उन्हें कर्मचारियों को बताना।

2. लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योजनाओं का विकास करना।

3. मानवीय तथा अन्य संसाधनों को प्रभावी ढंग से संगठित करना।

4. संगठन के सदस्यों का चयन विकास एवं मूल्याकंन करना।

5. कर्मचारियों के योगदान के लिए उनका नेतृत्व निर्देशन एवं अभिप्रेरण करना तथा कार्य वातावरण का सृजन करना।

6. कार्य निष्पादन का नियंत्रण करना।

7. बाह्म पक्षों ग्राहकों पूर्तिकर्ताओं विनियोक्ताओं सरकार एवं समुदाय के साथ व्यवहार विनिमय करना।

8. कर्मचारियों को आदेश निर्देश एवं सूचनायें प्रदान करना।

9 कर्मचारियों को संस्था की प्रगति से अवगत कराना।

10. संस्था की नीतियों योजनाओं तथा कार्यक्रमों से कर्मचारियों को अवगत कराना।

11. प्रबन्ध में सुधार हेतु कर्मचारियों से आवश्यक सूचनायें तथा सुझाव प्राप्त करना।

12. मानवीय सम्बधों का निर्माण करना।

13. कर्मचारी के आवगमन को रोकना तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करना।

14. सामाजिक एवं अनौपचारिक सम्बधों को सुगम बनना।

15. कार्यविधि में प्रशिक्षण उपकरण आदि की व्यवस्था करके कार्य के उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना।

16. आवश्यक तथ्यों एवं आकणों का विनियम करना।

सम्प्रेषण की श्रेणियां या प्रकार

1. प्रकृति अथवा अभिगम के आधार पर

2. सम्बधों के आधार पर

3.प्रवाह के आधार पर

4. क्षेत्र के आधार पर

5. माध्यमों के आधार पर

1. प्रकृति या अभिगम के आधार पर

प्रकति के आधार पर सम्प्रेषण तीन प्रकार का हो सकता है–

1. सूचनात्मक सम्प्रेषण

2. अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण तथा

3. संगठनात्मक सम्प्रेषण

1. सूचनात्मक सम्प्रेषण –यह पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है। यह प्राथमिक रूप से संचरण पहलुओं से जुड़ा होता है। विशिष्ट रूप से प्रेषक संदेश प्राप्तकर्ता माध्यम सूचनात्मक सम्प्रेषण के प्रमुख तत्व है। इस सम्प्रेषण का उद्देश्य दूसरे पक्ष को केवल सूचना पहुँचाना होता है। यह सांख्यिकीय गणितीय एवं तर्कयुक्त होता है। यह सूचना विचारधारी तथा सिबरनेटिक्स पर आधारित होता है।

2. अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण –सूचनात्मक सम्प्रेषण गणितीय अभिमुखी होता है। जबकि अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण व्यवहारत्मक होता है। यह व्यवहार परिवर्तन पर बल देता हैं। इसमें एक तरफ भाषा तथा दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें जैसे अवबोध अभिप्रेरण संज्ञान आदि सम्मिलित होती है। यह संचेतना श्रवध तथा गैर शाब्दिक तत्वों पर बल देता है। इस सम्प्रेषण में प्रतिपुष्टि का विशेष महत्व होता है। यह वैयक्तिक होता है।

3. संगठनात्मक सम्प्रेषण –परम्परागत रूप से संगठनात्मक सम्प्रेषण का दृष्टिकोण संरचनात्मक रहा है। यह संगठन संरचना में रेखीय सूचना प्रवाहों को दर्शाता है। परम्परागत संगठन संरचनाओं में निम्नलिखित को दर्शाता हैं–1. आदेश एवं निर्देश, 2. नीतियाँ कार्यक्रम लक्ष्य, 3. संगठन पुस्तिकायें नीति पुस्तिकायें, 4. स्मरण पत्र पत्र व्यवहार प्रतिवेदन, 5. कार्यक्रम पत्रक कार्यवाही विवरण, 6. वार्षिक रिपोर्ट, 7. जाँच पडताल निवेदन, 8. कर्मचारी शिकायतें परिवेदनाएँ आदि।

सम्बन्धों के आधार पर (Types on the Basis of Relations)

संदेश भेजने वाले संदेश प्राप्तकर्ता के बीच सम्बन्धों के आधार पर सम्प्रेषण के दो प्रकार हो सकते हैं–1. औपचारिक सम्प्रेषण तथा 2. अनौपचारिक सम्प्रेषण।

अनौपचारिक सम्प्रेषण –जब किसी उपक्रम में औपचारिक सम्बन्धों वाले व्यक्तियों के बीच निर्धारित मार्ग व श्रृंखला के अनुसार संदेशो का आदान प्रदान किया जाता है। तो उसे औपचारिक सम्प्रेषण कहा जाता है। इस सम्प्रेषण का मार्ग संगठन के ढाँचे में निर्धारित प्रक्रियों के अनुसार तय होता है। यह विशेष पद या स्थिति में रहकर किया गया सम्प्रेषण है। यह व्यक्तियों के बीच न होकर पदो के बीच होने वाला संदेशवान है। यह निरकुंश प्रबन्ध व्यवस्था में एक मार्गीय तथा प्रजातांत्रिक प्रबन्ध में द्विमार्गीय होता है। अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश निर्देश, सुचनायें, नीतियां, नियम, कार्यक्रम, मूल्यांकन आदि के रूप में औपचारिक संदेश देते है। दूसरी ओर अधीनस्थ अपने अधिकारियों के पास रिपोर्ट, शिकायते आदि औपचारिक रूप से प्रस्तुत करते है। औपचारिक संदेश अधिकारों के अन्तर्गत एवं नियमानुसार ही दिये जाते है। लाभ औपचारिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. संदेशो का आदान प्रदान पूर्व निर्धारित मार्गो से होता है।

2. संदेशो के लिए उत्तरदायित्व का निर्माण सुगम हो जाता है।

3. संदेशो का स्वरूप व सीमा पूर्व निर्धारित होने से विकृति की सम्भावना कम हो जाती है।

4. इससे विभिन्न पदो के बीच समन्वय आसान हो जाता है।

5. ये संदेश पूर्व निर्धारित समय पर स्वतः ही दिये जाने से सूचनाओं के क्रमबद्धता एवं निरन्तरता बनी रहती है।

दोष –औपचारिक दोषसंदेशवाहन के दोष इस प्रकार हैं–

1. पूर्व निर्धारित मार्गो के कारण संदेशो के सामान प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है।

2. इससे कार्यो में देरी होती है।

3.प्रायः लिखित संदेश भिजवाये जाने के कारण यह प्रक्रिया खर्चीली है।

4. विभिन्न स्तरों पर संदेश के विकृत हो जाने के सम्भावना रहती है।

5. प्रेषक तथा प्रेषित के बीच स्थिति सम्बन्धी अवरोध से संदेश का अर्थ प्रभावित होने की सम्भावना होती है।

अनौपचारिक सम्प्रेषण या जनप्रवाद अगूंरीलता सम्प्रेषण (Informal Communication or Grapevine) – औपचारिक स्थिति के कारण नहीं वरन् आपसी सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर संदेशों का आदान प्रदान करना अनौपचारिक सम्प्रेषण कहलाता है। यह सम्प्रेषण संगठन की संचार व्यवस्था का एक आवश्यक भाग है तथा संस्था में सामाजिक सम्बन्धों के विकसित होने के फलस्वरूप किया जाता है। इसकी श्रृंखला संगठन द्वारा निर्धारित नहीं होती है। वरन् स्वतः ही बनती एवं परिवर्तित होती है। अनौपचारिक सम्प्रेषण को ग्रेपवाइन या जनप्रवाद के नाम से पुकारा जाता है। सामान्यतः जनप्रवाद द्वारा कही सुनी बातों सुनी सुनाई सूचनाओं आपसी चर्चाओं अनुमानों विकृत सूचनाओं तोडे मरोडे गये तथ्यों तीखी चटपटी खबरों अर्द्ध सत्यों मिथ्या असिद्ध बातों गुत्थियों आदि का प्रसारण करता है। इसीलिए इसे ष्अफवाहों की मिलष् भी कहा जाता है। जनप्रचार की विश्वसनीयता संदेहपूर्ण होती है। जनप्रवाद तत्कालिक होता है तथातत्कालिक मार्गो से होकर शीघ्र ही समस्त संस्था में छा जाता है। यह कोहरे के समान होता है। जिसमें वास्तविक सत्य गुम हो जाता है। औपचारिक सम्प्रेषण की गति बहुत तेज होती है। यह भी आवश्यक नहीं होता है। कि जनप्रवाद पूर्णतः असत्य ही हो। कई बार यह सत्यता के करीब होता है। अनाधिकृत होता है तथा ऐसे संदेशो का आदान प्रदान सामाजिक समारोहों दोपहर के भोजन के समय सामूहिक कार्यक्रमों में अथवा आमोद प्रमोद के क्षणों में होता है। अनौपचारिक सम्प्रेषण के निग्न उद्देश्य होते हैं–

(1) वैयक्तिक आवश्यकताओं जैसे मैत्री सम्बन्ध आदि को सन्तुष्ट करना।

(2) उदासीनता एवं नीरसता के प्रभावों को कम करना।

(3) दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करना।

(4) कार्य सम्बन्धी सूचना जो औपचारिक मार्ग से प्राप्त नहीं होती है, का स्त्रोत होता है।

(5) आपसी एवं वैयक्तिक समस्याओं के समाधान ढूँढना।

लाभ –अनौपचारिक सम्प्रेषण के निम्न लाभ हैं–

(1) अनौपचारिक संदेश स्वतन्त्रतापूर्वक प्रेषित किये जा सकते हैं। इसमें पद एवं स्थिति बाधक नहीं होती है।

(2) इनमें औपचारिक सम्बन्धों की आवश्यकता नहीं पडती है

(3) तत्काल संदेश के कारण समय व्यर्थ नहीं जाता है।

(4) यह प्रबन्धकीय निर्णयों व कार्यो में सहायक होता है।।

(5) यह संगठनात्मक बाधाओं को दूर करने में सक्षम है।

(6) यह विचारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।

दोष– इसके कुछ प्रमुख दोष निम्नानुसार हैं

(1) अनौपचारिक सम्प्रेषण का स्त्रोत ढूँढना ही कठिन होता है। अतः उत्तरदायित्व निर्धारण कठिन होता है।

(2) इनमें विश्वसनीयता की सीमा निर्धारित करना कठिन होता है।

(3) ये संदेश अर्द्ध सत्य व विकृत तथ्यों के रूप में हो सकते हैं।

(4) इन पर नियन्त्रण रखना तथा इनके आधार पर निर्णय लेना कठिन होता है।

(5) ये प्रबन्धक के लिए भ्रम एवं कठिनाई उत्पन्न करके प्रबन्धकीय कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव डाल सकते है।

संदेशो के प्रवाह आधार पर संदेशों के प्रवाह के आधार पर सम्प्रेषण को निम्न चार श्रेणियों में बाटाँ जा सकता है–

1. अधोगामी सम्प्रेषण

2. ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण

3. समतल या पाश्विक सम्प्रेषण तथा

4. विकर्णीय सम्प्रेषण

1. अधोगामी सम्प्रेषण –उच्च अधिकारी से अधीनस्थों को भेजे जाने वाले सन्देशो को अधोगामी सम्प्रेषण कहा जाता हैं। ये सन्देश औपचारिक पदानुक्रम (hierarchy) के अनुसार क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर लम्बवत रूप से चलते हैं। ये प्रबन्धको तथा अधीनस्थों के मध्य अधिकार दायित्व सम्बन्धों को दर्शाते है। चूँकि इनमें संदेश सामान्य कर्मचारी तक पहुँचायें जाते हैं अतः कर्मचारी सम्प्रेषण भी कहते हैं। इस प्रकार के सम्प्रेषण में प्रायः निम्न संदेश सम्मिलित होते है–

(1) कार्य के सम्बन्ध में आदेश निर्देश एवं दायित्व

(2) नीतियों, नियमों, कार्यपद्धतियों, लक्ष्यों आदि के बारे में सूचनायें

(3) कार्य सूचनाएँ तथा अन्य कार्यों से सम्बन्ध

(4) कार्य निष्पादन के बारे में प्रतिपुष्टि

(5) संगठन की प्रगति भावी कार्यक्रमों के बारे में सामान्य सूचना

(6) डाँट फटकार प्रशंसा आलोचनाएँ

(7) अधीनस्थों से कार्य सम्बन्धी प्रश्न।

अधोगामी सम्प्रेषण लिखित मौखिक या सांकेतिक हो सकता है। ये संदेश प्रायः वयक्तिक निर्देश निजी भेंट सभाओं व सम्मलेन भाषण गोष्ठी पत्र मेमों आदेश निर्देश वार्षिक रिपार्ट पत्रिकाओं सूचना पट्ट बुलेटिन हस्त संकेत आदि के द्वारा प्रेषित किये जाते हैं इस सम्प्रेषण को अधीनस्थों द्वारा विशेष महत्व दिया जाता है क्योंकि यह कार्य निष्पादन से सम्बन्धित होता है। इस सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए प्रबन्धकों को योजना बनाने अधीनस्थों का विश्वास जीतने तथ्यों की जानकारी करने तथा सकारात्मक निर्मित करने पर ध्यान देना चाहिए।

2. ऊर्ध्वागामी सम्प्रेषण (Upward Communication) – जब संदेश का प्रवाह निम्न पदों से उच्च पदों की ओर होता है अर्थात जब संदेश अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उच्च अधिकारियों को भेजे जाते हैं तो इसे ऊर्ध्वागामी सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमे प्रायः निम्न प्रकार के संदेश हो सकते हैं–

(1) कर्मचारियों के कार्य प्रतिवेदन,

(2) अधीनस्थों की कार्य समस्याये,

(3) अधीनस्थों की प्रतिक्रियायें संशय प्रश्न आदि,

(4) आदेशो निर्देशों पर आपत्तियाँ

(5) कर्मचारियों के विचार मत व सुझाव

(6) कार्य सम्बन्धी कठिनाइयाँ शिकयतें

(7) कार्यो व नीतियों की आलोचनाएँ व सुझाव

(8) कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्यायें

(9) भावनाएँ अभिवृत्तियाँ सहायता हेतु निवेदन इत्यादि।

संगठनों में ऊर्ध्वागामी सम्प्रेषण की स्वतन्त्रता के लिए प्रबन्ध द्वारा खुले द्वार की नीति परिवेदन प्रणाली सुझाव पद्धति अभिवृत्ति सर्वेक्षण कर्मचारी प्रबन्ध बैठक संयुक्त प्रबन्ध समिति संघ प्रतिनिधि सहभागिता आदि की व्यवस्था की जाती हैं ऊर्ध्वागामी सम्प्रेषण कर्मचारियों की भावनाओं समस्याओं व सुझावों का ज्ञान हो जाता है। तथा उनके मनोबल उत्पादकता में वृद्धि होती है।

3. समतल अथवा पाश्विक सम्प्रेषण –जब समान स्तर के कर्मचारियों अधिकारियों अथवा विभागाध्यक्ष के बीच संदेशों का आदान प्रदान होता है। तो इसे समतल अथवा पार्रिवक सम्प्रेषण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में इसमे निम्न प्रकार का सम्प्रेषण शामिल है–

(अ) एक ही कार्य समूह या विभाग में समान स्तर के कर्मचारियों में सम्प्रेषण तथा

(ब) समान संगठनात्मक स्तर पर कार्यशील विभागों के मध्य अथवा उनके अन्तर्गत समतलीय संदेशवाहन।

यह सम्प्रेषण समन्वयात्मक प्रकृति का होता है तथा कार्यो के विशिष्टीकरण के कारण इसकी आवश्यकता होती है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनो ही प्रकार का हो सकता है। इसका उद्देश्य विभिन्न कार्यो विभागों अथवा योजनाओं सामंजस्य उत्पन्न करना होता है। इससे कार्यो एवं निर्णयों को शीघ्रता से पूरा किया जा सकता है। संगठन में परियोजना दल कार्य बल आत्म संगठन अथवा समितियों का गठन समतल सम्प्रेषण के ही प्रारूप हैं।

4. विकर्णीय सम्प्रेषण विकर्णीय सम्प्रेषण होता है जो संगठनात्मक पदानुक्रम तथा आदेश श्रृंखला काटकर उसके पार निकल जाता है। यह सम्प्रेषण रेखा एवं कर्मचारी विभाग के सम्बन्धों के कारण आवश्यक हो जाता है। रेखा एवं विशेषज्ञ कर्मचारियों के मध्य विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं जैसे शुद्ध परामर्शकारी अथवा जिनमें विशेष रेखा कर्मचारियों पर सुदृढ़ कार्यकारी सत्ता का उपयोग करते है। इस प्रकार कोई भी विशेषज्ञ कार्यात्मक सत्ता होने पर दूसरे विभाग के रेखा कर्मचारी को आदेश निर्देश दे सकता है। इसे अग्रांकित चित्र संख्या 29.3 के द्वारा समझा जा सकता है।

क्षेत्र के आधार पर प्रकार (Types on the Basis of Scope) –क्षेत्र के आधार पर सम्प्रेषण को दो भागों में बाँटा जाता है –1. आन्तरिक सम्प्रेषण तथा2. बाह्म सम्प्रेषण।

1. आन्तरिक सम्प्रेषण –संस्था के भीतर होने वाले अधोगामी ऊर्ध्वागामी एवं समतल संदेशवाहन को ही आन्तरिक सम्प्रेषण कहा जाता है। यह उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के बीच तथा विभिन्न संगठनात्मक स्तरों पर कर्मचारियों व इकाइयों के मध्य किया जाता है। संस्था के संचालन में आन्तरिक सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण स्थान होता है। आन्तरिक सम्प्रेषण में आदेश निर्देश सूचनाएँ नियम कार्यपद्धतिया कार्य रिपोर्ट संगठन चार्ट अधीनस्थों के विचार सुझाव शंकायें शिकायतें समस्यायें निवेदन आदि सम्मिलित हैं।

2. बाह्म सम्प्रेषण –संस्था अपने बाह्य वातावरण से भी जुडी हुई होती है। इस वातावरण में अनेक समूह होते हैं जैसे ग्राहक विनियोजक व्यापारी स्थानीय समुदाय सरकार दबाव समूह इत्यादि इन बाह्य समूहों तथा संस्था के बीच होने वाले संदेशों के आदान प्रदान को ही बाह्म सम्प्रेषण कहा जाता है। एक व्यावसायकि उपक्रम के बीच सूचनाओं एवं संदेशो का निरन्तर आदान प्रदान होता रहता है। बाह्य सम्प्रेषण में निम्नलिखित संदेशो व कार्यों को शामिल किया जा सकता है–

(i) बाजारअनुसंधान द्वारा ग्राहकों की आवश्यकताओं का अध्ययन

(ii) ग्राहकों व व्यापारियों से आदेशों की प्राप्ति

(iii) विनियोजन प्रवृत्तियाँ

(iv) श्रम संघो के साथ वार्तायें तथा सामूहिक सौदेबाजी

(v) सरकार राजनेताओं तथा दबाव समूहों के साथ विचार विमर्श एवं वार्ता

(vi) प्रतिस्पर्धी संस्थाओं के साथ समझौते व संयोजन

(vii) स्थानीय समुदाय की समस्याओं पर विचार

(vili) यंत्र उपकरण कच्ची सामग्री आदि की आपूर्ति के लिए व्यवहार

(ix) सरकार की नीतियों की समीक्षा व कानूनों का पालन

(x) बैंको द वित्तीय संस्थाओं के साथ पत्र व्यवहार

(xi) आयात निर्यात पूंजी नियन्त्रण लाभ वितरण आदि के सम्बन्ध में बाह्म पक्षों से सम्पर्क द्य

(xii) बाह्म सम्प्रेषण को प्रभावी बनाकर ख्याति अर्जित की जा सकती है।

माध्यम के आधार पर प्रकार (Types on the Basis of Media)—संदेश माध्यमों के आधार पर सम्प्रेषण के निम्न चार प्रकार हैं—1. मौखिक सम्प्रेषण, 2. लिखित सम्प्रेषण, 3. सांकेतिक सम्प्रेषण तथा4. दृश्य श्रव्य सम्प्रेषण।

1. मौखिक सम्प्रेषण (Verbal Communication) — जब वाणी अथवा शब्दों के उच्चारण द्वारा पारस्परिक रूप से संदेशों का आदान प्रदान किया जाता है। तो इसे मौखिक सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमें प्रेषक व प्रेषित आपने सामने रहकर अथवा वे किसी यंत्र के माध्यम मे आपस में संदेशों का विनिमय कर सकते है। यह सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रभावशाली माध्यम माना जाता है। लॉरेन्स ऐप्पले का कथन है कि ''मौखिक शब्दों से पारस्परिक सम्प्रेषण करना संदेशवाहन की सर्वोत्तम कला है।'' मौखिक सम्प्रेषण के कई ढंग हैं, जैसे— प्रत्यक्ष बातचीत भेंटवार्ता संगोष्ठी सभा भाषण विचार विमर्श रेडियों वार्ता साक्षात्कार सम्मलेनअपने मौखिकप्रशिक्षण पाठ्यक्रम आदि। विभिन्न अनुसंधानों से स्पष्ट हो चुका है कि प्रबन्धक वर्ग कुल सम्प्रेषण समय का 75 प्रतिशत समय मौखिक सम्प्रेषणों ही व्यतीत करते हैं। सम्प्रेषण के महत्व को निम्न उद्देश्यों द्वारा दर्शाया जा सकता है—

1. प्रभावशाली नेतृत्व की स्थापना करना।

2. प्रबन्ध में मानवीय दृष्टिकोण को मान्यता प्रदान करना।

3. प्रबन्ध में कर्मचारी भागीदारी को प्रोत्साहन करना।

4. परामर्शीय प्रबन्ध को प्रोत्साहित करना।

5. सत्ता के प्रत्यायोजन एवं कार्य निष्पादन को प्रभावी बनाना।

6. व्यवसाय की समस्याओं पर मन्त्रणा करना।

7. कर्मचारियों में समूह भावना का विकास करना।

8. कार्य का प्रजातान्त्रिक वातावरण तैयार करना।

लाभ (Advantage) – मौखिक सम्प्रेषण में निम्न लाभ हैं–

(i) हाव भाव व शब्दों की अभिव्यक्ति के कारण यह सर्वाधिक प्रभावशाली होता है।

(ii) अस्पष्टता का निवारण तत्काल हो जाता है।

(iii) संदेशो को शीघ्र पहुँचाया जा सकता है।

(iv) प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण प्रतिक्रिया की जानकारी हो जाती है।

(v) यह लोचशील है जिसका आवश्यकतानुसार समायोजन सम्भव है।

दोष (Disadvantage) –इसके कुछ दोष निम्नानुसार हैं–

(i) इसमें दोनो पक्षों की उपस्थिति आवश्यक होती है द्य

(ii) इसका सही सही अभिलेख उपलब्ध न होने पर भावी संदर्भ देना कठिन हो जाता है।

(iii) महत्वपूर्ण बिन्दु छूट जाने का भय रहता है।

(iv) लिखित साक्ष्य का अभाव रहता है।

(v) सोचने के लिए अपर्याप्त समय रहता है।

2. लिखित सम्प्रेषण –लिखित सम्प्रेषण से आशय एक द्वारा किसी संदेश को लिखित रूप में प्रेषण करने से है। लिखित सम्प्रेषण के लिए पत्र पत्रिकायें बुलेटिन प्रतिवेदन हैण्डबुक मेन्युअल्स सुझाव पुस्तिकायें ग्राफ चित्र परिपत्र कार्य वृतांत आदि का प्रयोग किया जाता है। लिखित सम्प्रेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम है। अतः इसकों तैयार करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। कीथ डेविस के अनुसार किसी संवाद को लिखते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. सरल शब्दों व मुहावरों का प्रयोग करना चाहिए।

2. छोटे एवं प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

3. व्यक्तिगत सर्वनामों जैसे तुम और वह का प्रयोग करना चाहिए।

4. उदाहरणों दृष्टान्तों व चार्टो का प्रयोग करना चाहिए।

5. छोटे छोटे वाक्यों तथा अनुच्छेदों का प्रयोग किया जाए।

6. वाक्य संरचना एक्टिव वाइस के प्रयोग पर आधारित चाहिए।

7. अलंकारों और विश्लेषणों का न्यूनतम प्रयोग किया जाना चाहिए।

8. विचारों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष एवं तर्कयुक्त होनी चाहिए।

9. अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

लाभ– लिखित सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ है

1. संदेशो में स्पष्टता रहती है तथा इनका प्रमाण उपलब्ध रहता है।

2. इन्हें भावी सन्दर्भ के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

3. यह विस्तृत संदेशो के लिए उपयोगी रहता है।

4. इसमें दायित्व का निर्धारण आसान होता है।

5. इसमें अर्थ की समानता रहती है।

6. इसमें भाषा व्यक्तित्व एवं भावनात्कम बाधाओं पर सुगमता से नियन्त्रण किया जा सकता है।

7. परस्पर अविश्वास के समय यह उपयुक्त रहता है।

दोष– लिखित सम्प्रेषण के दोष निम्नानुसार हैं–

1. इसमें समय धन व श्रम का अपव्यय होता है।

2. प्रषिति की प्रतिक्रियाओं का तत्काल ज्ञान नहीं हो पाता है।

3. इसमें भ्रमों व संदेहों के निवारण में समय लग जाता है।

4. इसमें गोपनीयता भंग होने का भय रहता है।

5. लिखित संदेश में अनेक औपचारिकताएँ पूरी की जाती है।

इन सब दोषों के उपरान्त भी लिखित सम्प्रेषण बहुत उपयोगी होता है। तकनीकी औपचारिक एवं वैधानिक प्रकृति के सम्प्रेषण तो लिखित ही होते है। अधिक आँकडेयुक्त संदेशो के लिए भी लिखित माध्यम ही अपनाना पडता है। अनेक वैधानिक सभाओं नियमावलियाँ कार्यावली सूक्ष्म आदि लिखित रूप में ही सम्प्रेषित किये जाते है।

3. सांकेतिक अथवा अमौखिक सम्प्रेषण– यह सम्प्रेषण संकेतों, हाव–भाव, मौन शारीरिक मुद्राओं चेहरे अभिव्यक्ति आदि के द्वारा किया जाता है। कहावत है कि ष्हाव–भाव शब्दों की अपेक्षा अधिक दर्शाते हैं।ष यह उक्ति सांकेतिक सम्प्रेषण के महत्व को प्रकट करती है। सांकेतिक सम्प्रेषण ष्शरीर की भाषाष अथवा ष्व्यवहार की भाषाष पर आधारित है।

शोभना खण्डवाला के अनुसार सम्प्रेषण में प्रत्यक्ष रूप में जाने अनजाने में प्रेषित शब्दों प्रवृत्तियों, भावनाओं, स्वरों, संकेतों तथा इशारों का योग है। यहाँ तक कि मौन रहना सम्प्रेषण का प्रभावपूर्ण रूप है। किसी व्यक्ति के ललाट पर पडे हुए बल असहमति की इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति है जो कई सौ शब्दों द्वारा भी प्रकट नहीं की जा सकती है।ष सांकेतिक सम्प्रेषण में पीठ थपथपाना किसी व्यक्ति की ओर मुस्कुराना उससे हाथ मिलाना आँख इशारा करना टेढी निगाह से देखना मुँह लटका देना आदि शारीरिक हाव–भाव सम्मिलित प्रायः सांकेतिक सम्प्रेषण का उपयोग स्वतन्त्र रूप से किया जाता है। इसका प्रयोग मौखिक संचार के साथ ही अधिक होता है।

4. दृश्य श्रव्य सम्प्रेषण (Audio Visual Communication)– वर्तमान युग में सम्प्रेषण के दृश्य श्रव्य माध्यमों का महत्व तेजी से बढ़ता जा रहा है। आजकल उद्योगों में भी अनेक क्रियाओं जैसे प्रशिक्षण सभाओं व सम्मेलनों विक्रय अभियानों सर्वेक्षणों प्रचार आदि में चित्रों फिल्मों वीडियों कैसेट मूवी कैमरों टेप रिकॉर्डरों का उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है। तकनीकी उपकरणों के उत्पादन व विक्रय विज्ञापन शिक्षण कार्यक्रमों आदि में दृश्य श्रव्य सम्प्रेषण का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

प्रबन्ध एवं व्यवसाय में सम्प्रेषण का महत्व (Importance of Communication in ManagementAnd Business)

आधुनिक व्यवसाय में सम्प्रेषण का महत्व दिनों दिन बढता जा रहा है। लुथान्स के अनुसार "सम्प्रेषण प्रबन्ध की गतिशीलता है। ड्रकर का मत है ष्आज उद्योगों में सूचनाओं के विस्फोट एवं कोलाहल के स्तर में वृद्धि हो गयी है, इससे गलतफहमी की कभी न भर सकने वाली खाई उत्पन्न हो गई है। अतः उद्योगों में प्रभावी सम्प्रेषण का महत्व और भी बढ़ गया है।ष कीथ डेविस के अनुसार सम्प्रेषण के अभाव में किसी भी व्यवसाय की सफलता की कामना करना एक कोरी कल्पना होगी।ष प्रो. थियो हैमेन लिखते हैं कि ष्सभी प्रबन्धकीय कार्यो की सफलता सफल सम्प्रेषण पर निर्भर है।ष वास्तव में सम्प्रेषण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके असफल होने पर कई अन्य समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। हिक्स एवं गुलैट लिखते हैं कि ष्विश्व की समस्त समस्याओं की जड मनुष्य की सम्प्रेषण अयोग्यता तथा उसका यह भ्रम है कि वह सम्प्रेषण कर रहा हैं।ष सम्प्रेषण के महत्व को स्पष्ट करते हुए फ्रेड लुथान्स लिखते है कि "प्रेमियों के झगडों मानवजातीय दुर्भावनाओं राष्ट्रों के बीच युद्धों पीढी अन्तराल औद्योगिक विवादों तथा संगठनात्मक संघर्षो सब कुछ का आधार एवं स्पष्टीकरण सम्प्रेषण ही है।ष प्रबन्ध एवं व्यवसाय में प्रभावी सम्प्रेषण के महत्व को निम्न शीर्षकों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है

1. प्रबन्धकीय कार्यो का क्रियान्वयन (Performance of Managerial Functions) – थियो हैमेन लिखते है कि ष्सभी प्रबन्धकीय कार्यो की सफलता सम्प्रेषण पर निर्भर है।ष पीटर्स के अनुसार "अच्छा सम्प्रेषण सुदृढ प्रबन्ध की नींव है।ष किसी भी उपक्रम में प्रबन्धक सम्प्रेषण के माध्यम से ही विभिन्न प्रबन्धकीय क्रियाओं जैसे नियोजन संगठन समन्वय निर्देशन एवं नियन्त्रण आदि का सफलतापूर्वक निष्पादन करता है। इन प्रबन्धकीय कार्यो में सम्प्रेषण का महत्व निम्न प्रकार है–

(i) नियोजन (Planning)– प्रबन्धक अपने द्वारा निर्धारित योजनाओं की जानकारी अपने अधीनस्थों को देता है। तथा उन्हें लागू करवाता है। सर्वश्रेष्ठ विकल्प की खोज एवं चयन में विचारों के आदान प्रदान का बहुत महत्व है। सम्प्रेषण के अभाव में प्रबन्धकीय योजनाएँ केवल कागजो तक सीमित रह जाती हैं। सूचनायें मांगने पर प्रस्तुत करते हैं जो कि दोनों की त्रुटियों को छिपाने वाली होती हैं व अपनी स्वार्थ सिद्धि में सहायक सूचनायें ही प्रकट करते हैं।

2. भाषा सम्बन्धी बाधायें (Language Barriers) – सम्प्रेषण प्रक्रिया में भाषा सम्बन्धी बाधायें सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों तथा प्रेषित दोनों के मस्तिष्क में "अर्थ–भेद" अथवा "समझ अन्तरालष बना रहता है। फलस्वरूप सम्प्रेषण का उद्देश्य ही विफल हो जाता है। भाषा सम्बन्धी प्रमुख बाधायें इस प्रकार हैं–(i) भाषा की भिन्नता, (ii) शब्दों की जटिलता व क्लिष्टता, (iii) द्विअर्थी वाक्य रचना व दोषपूर्ण अनुवाद, (iv) गतल शब्दों का चयन अथवा तकनीकी शब्दावली, (v) विशिष्ट स्थानीय बोलगीत अथवा स्व निर्मित शब्दों का प्रयोग, (vi) शब्दार्थ भावार्थ अथवा संकेतात्मक व निर्देशात्मक अर्थ की समस्या, (vii) सुविधात्मक रूपान्तरण व अनुवाद उपर्युक्त भाषा किरणों से संदेश के पहुँचने में बाधा उपस्थित हो जाती है। स्ट्रांग के शब्द का अर्थ लगाता है और यह आवश्यक नहीं है कि यह अर्थ संदेश देने वाले व्यक्ति के अर्थ से मिलता ही हो।

3. तकनीकी बाधाएँ (Technical Barriers) – सम्प्रेषण की तकनीकी बाधाएँ सम्प्रेषण माध्यमों में अभियांत्रिकी दोषों संचालकीय त्रुटियों गलत माध्यमों के चयन अथवा संचार यंत्रों के गलत ढंग से प्रयोग करने के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। पर्याप्त सम्प्रेषण साधनों के अभाव में भी तकनीकी बाधाएँ खडी हो जाती है।

वैयक्तिक भिन्नतायें संगठन में वैयक्तिक भिन्नतायें पाया जाना स्वाभाविक है। व्यक्तियों के रहन सहन रीति रिवाज खान पान आदि में अन्तर बना रहता हैं इसके फलस्वरूप उनकी मानसिक स्थिति में अन्तर पाया जाता है। टेनरी एच. एबर्स ने सम्प्रेषण की समस्या को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित वैयक्तिक भिन्नताओं का वर्णन किया है–1. संवदेन घटक स्वास्थ्य एवं शारीरिक तत्व, 2. आयु लिंग शैक्षिक स्तर, 3. क्षेत्रीय भिन्नतायें रहन सहन भाषा रीति रिवाज खान पान, 4. स्वभाव आदतें धर्म, 5. आर्थिक स्तर, 6. संगठन वैचारिक मतभेद, 7. व्यक्तिगत घटक अनुभव ज्ञान विचार दृष्टिकोण तौर तरीके आदि।

उपर्युक्त समस्त घटक सम्प्रेषण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करते हैं। अर्ल पी. स्ट्रॅन्स के अनुसार ''व्यक्तियों की भिन्न भिन्न एवं मिश्रित मनोवैानिक प्रवृत्तियाँ तर्क प्रतिक्रियाएँ भावनाएँ विश्वास आदि होते हैं। जब एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ सम्प्रेषण करता है तो ये सभी भिन्नताएँ सक्रिए हो जाती हैं तथा सन्देश को उचित रूप से समझने में बाधक बन सकती हैं।''

5. प्रबन्धकीय बाधाएँ (Management Barriers)– प्रबन्ध व्यवस्था की स्थिति शैली एवं प्रारूप के अकुशल होने के कारण भी सम्प्रेषण के मार्ग मे बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं प्रबन्धजन्य बाधाओं के कुछ कारण इस प्रकार हैं–

1. अधिनायकवादी प्रबन्ध –अधिनायकवादी प्रबन्धक प्रायः आदेश देने निर्देश जारी करने में ही विश्वास रखते हैं वे अपने कर्मचारियों से सुझाव व परामर्श प्राप्त करने अथवा उनकी

समस्याओं को जानने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। इस प्रकार वे सम्प्रेषण को एक मार्गीय बनाकर सहभागी व्यवस्था की उपेक्षा करते है।

2. निर्देशन का अभाव –कई प्रबन्धकों के विचारों व्यक्तित्व अथवा चिन्तन में दृढता नहीं होती है तथा उनमें योग्यता का अभाव होता है। फलस्वरूप वे निर्देशात्मक सम्प्रेषण नहीं कर पाते है।

3. पूर्ण संचार का अभाव– कई बार प्रबन्धक आलस्यवश गोपनीयता के कारण जानकबूझ कर अथवा यह जानते हुए कि सबको पता है पूरी सूचनाओं का प्रसारण नहीं कर पाते हैं फलतः सम्प्रेषण में कठिनाई उत्पन्न होती है।

4. अधिकारियों की उपेक्षा –कई बार अधिकारी राम्प्रेषण में उपेक्षा की मनोवृत्ति रखते है वे कार्य निर्देश देने मार्गदर्शन प्रदान करने कर्मचारियों की शिकायतों को सुनने भ्रान्तियों को दूर करने आदि में उपेक्षा भाव बरतते है। इससे सम्प्रेषण अपूर्ण व प्रभावहीन हो जाता है।

6. अन्तर्वैयक्तिक एवं बौद्धिक बाधायें (Interpersonal and Mental Barriers) – सम्प्रेषण की कई बाधायें प्रेषक एवं प्रषिति की बौद्धिक स्थिति तथा उनके अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं। इस प्रकृति की कतिपय बाधायें इस प्रकार हैं–

1. अस्पष्ट मान्यतायें –अस्पष्ट मान्यताओं के कारण प्रेषक एवं प्रेषिति दोनो संदेश की अपने अपने दृष्टिकोण से व्याख्या करते है जो परस्पर विरोधी हो सकती है। इससे दुविधापूर्ण स्थिति बन जाती है तथा सम्प्रेषण विकृत हो जाता हैं।

2. अपर्याप्त समायोजन काल –कई विषयों से सम्बन्धित सम्प्रेषण में व्यक्तियों के सोचने एवं स्वयं को मानसिक रूप से तैयार करने हेतु पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है किन्तु इस समायोजन काल की अपर्याप्तता के कारण सम्प्रेषण अपूर्ण रहता है।

3. अविश्वास –जब सम्प्रेषण प्रक्रिया के दोनो पक्षों को एक दूसरे पर अविश्वास होता है तो व मूल संदेश में अपने अनुसार कुछ परिवर्तन कर देते हैं यह संशोधन सम्प्रेषण के प्रभाव को कम कर देता हैं पूर्वाग्रह के फलस्वरूप भी ये परिवर्तन पर लिये जाते हैं।

12. परामर्श (Consultation) – सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए प्रेषक को सभी सम्बद्ध व्यक्तियों से परामर्श करना चाहिए इससे उनकी प्रतिक्रियाओं नये सुझावों नये विचारों का भी ज्ञान हो जाता है।

13. सम्यक श्रवण (Right Listening)– प्रभावी सम्प्रेषण के लिए प्रेषक एवं प्रषित को एक अच्छा श्रोता होना चाहिए ताकि वे एक दूसरे की भावनाओं व आशय को ठीक समझ सकें सम्प्रेषण इकतरफा होने से इसका उद्देश्य विफल हो जाता है।

14. प्रतिपुष्टि (Feedback) – संदेश देने के पश्चात प्रेषक को प्रषिति की भावना प्रतिक्रियाओं विचारों सुझावों आपत्तियों शंकाओं एवं मतभेद को जानने का प्रयास करना चाहिए इससे दोनों के बीच सही समझ उत्पन्न होती है। तथा सम्प्रेषण का उद्देश्य भी पूर्ण जाता है।

15. समानुभूति (Sempathy) – एक प्रेषक को स्वयं को प्रषिति की स्थिति में रखना ही सम्प्रेषण प्रक्रिया का संचालन करना चाहिए इससे मतैक्यता एवं आपसी समझ बनाने में सुविधा होती है।

सम्प्रेषण की बाधायें एवं विघ्न(BarriersAnd Breakdowns in Communication)

सम्प्रेषण का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सही अर्थबोध कराके कार्य के लिए प्रेरित करता है। किन्तु कभी कभी वे संदेश का भिन्न भिन्न अर्थ लगा लेते है। तथा सम्प्रेषण का इच्छित उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता हैं ऐसा सम्प्रेषण की बाधाओं अवरोधको अथवा सम्प्रेषण विषय के कारण होता है। सम्प्रेषण के अनेक भौतिक मनोवैज्ञानिक बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है। भौतिक बाधाएँ भौतिक वातावरण जैसे शोरगुल दूरी समय की कमी के कारण उत्पन्न होती है। मनोवैज्ञानिक बाधायें भावनाओं पद स्थिति वैयक्तिक विचार सामाजिक मूल्यों आदि घटकों से सम्बन्धित हैं। अर्थगत बाधायें प्रेषक एवं प्रेषिति की योग्यता भाषा ज्ञान एवं अनुभव के कारण उत्पन्न होती है।

प्रो. लियो मैंगीन्सन ने सम्प्रेषण की बाधाओं को दो श्रणियों में बाँटा है– संगठनात्मक एवं अन्तर्वैयक्तिक द्य थियो हैमेन के अनुसार सम्प्रेषण की बाधाएँ चार प्रकार की हैं–(1) संगठनात्मक संरचना सम्बन्धी बाधायें, (2) स्थिति एवं पद सम्बन्धी बाधायें, (3) भाषा सम्बन्धी बाधायें तथा(4) परिवर्तन सम्बन्धी बाधायें।

मैक्फारलैंड के अनुसार सम्प्रेषण की मुख्य बाधायें निम्न हैं–

(1) दोषपूर्ण या विकृत उद्देश्य

(2) संगठनात्मक अवरोध

(3) भाषा अवरोध एवं

(4) मानवीय सम्बन्ध समस्या।

संक्षेप में सम्प्रेषण की प्रमुख बाधायें एवं विभंग घटक निम्नलिखित हैं–

संगठनात्मक संरचना –उपक्रम की संगठन संरचना सम्प्रेषण की अनेक बाधाओं को जन्म देती है। हैमेन के अनुसार ''संगठन संरचना कर्मचारियों की निर्बाध संचार करने की क्षमता को गहन रूप से प्रभावित करती है।'' ये बाधाएँ निम्न कारणों से उत्पन्न होती हैं–

(1) प्रबन्ध स्तरों की अधिकता –संगठन में जितने अधिक स्तर होते हैं सम्प्रेषण में उतनी ही बाधायें उत्पन्न होती हैं क्योंकि अधिक स्तरों से प्रेषक एवं प्रेषिति के मध्य की दूरी बढ़ जाती है। अधिक स्तरों के कारण संदेश के अधिक फिल्टरों से गुजरने के कारण विकृत होता चला जाता है। सम्प्रेषण श्रृंखला के प्रत्येक स्तर पर संदेश में कुछ जोड़े जाने हटाये जाने संशोधित किये जाने अथवा परिवर्तन किये जाने की संभावना रहती है।

(2) प्रबन्धकीय सत्ता– कई बार कुछ कर्मचारियों के पास कोई आदेश देने या सूचना भिजवाने की सत्ता नहीं होती है। दूसरी ओर कई अधिकारी कुछ संदेशों व सूचनाओं को

अनावश्यक रूप से गुप्त रखते है। ताकि संगठन में उनका महत्व बना रहे। कुछ अधिकारी अपने अधीनस्थों की समस्याओं समीक्षा या सुझावों को इसलिए भी नकार देते है। ताकि उनकी सत्ता कमजोर न दिखे।

(3) विशिष्टीकरण –विशिष्टीकरण के कारण व्यक्तियों के कार्यो दायित्वों व क्रियाओं में पृथकता उत्पन्न आ जाती है। उनके हितो दृष्टिकोण अवबोध व कार्य भाषा में भी भिन्नता आ जाती है उनकी तकनीकी शब्दावली संदर्भ दशा आदि भी पृथक् होती है। इसी प्रकार विभागीयकरण भी हितों निष्ठा व उद्देश्यों में भेद उत्पन्न करके सम्प्रेषण में विघ्न डालता है।

(4) स्थिति सम्बन्ध –पद भिन्नता भी कर्मचारियों को अपने बडप्पन अथवा छोटेपन का अहसास करवाती है। पदों का अन्तर व्यक्तियों की अहम् सन्तुष्टि हीनता के बोध कार्य दृ ष्टिकोण व्यक्तित्व प्रभाव आदि को प्रभावित करता है। इससे सम्प्रेषण के प्रवाह में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है।

(5) पदोन्नति की आकांक्षा

(i) कई अधीनस्थ कर्मचारी पदोन्नति की इच्छा के कारण अपने अधिकारी को प्रसन्न रखते हैं, अतः वे केवल वही।

(ii) संगठन संगठन निर्माण में भी सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण स्थान हैं बर्नार्ड के अनुसार संगठन के व्यापक सिद्धान्तों में सम्प्रेषण का एक केन्द्रीय स्थान है क्योंकि संगठन के व्यापक सिद्धान्तों में सम्प्रेषण का एक केन्द्रीय स्थान है क्योंकि संगठन के विस्तार एवं क्षेत्र का निर्धारण प्रायः पूर्ण रूप सम्प्रेषण की तकनीकों के द्वारा ही होता है। अधिकारों के प्रत्यायोजन कार्य आवटन आदि के लिए सम्प्रेषण आवश्यक होता है।

(iii) निर्देशन एवं नेतृत्व आज नेतृत्व की विचारधारा जनतांत्रिक एवं सहभागी हो गयी है। अधीनस्थों को विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान करने ही श्रेष्ठ नेतृत्व स्थापित किया जा सकता है। सहभागी नेतृत्व के द्वारा ही अधीनस्थों के मध्य विश्वास की भावना जागृत की जा सकती है तथा उन्हें लक्ष्य प्राप्ति की ओर प्रेरित किया जा सकता।

(iv) समन्वय सम्प्रेषण समन्वय का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके द्वारा यथासमय सूचनायें एवं निर्देश प्रसारित करके विभिन्न कार्यो में सामंजस्य उत्पन्न किया जा सकता है। मेरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार समन्वय के लिए अच्छा सम्प्रेषण आवश्यक है। यह संगठन के सभी स्तरों पर नीतियों को प्रेषित करने व्याख्या करने और अपनाने के लिए सूचनाओं और ज्ञान को प्राप्त करने अच्छे मनोबल एवं आपसी समझ के लिए आवश्यक है।

(v) नियन्त्रण नियन्त्रण में प्रबन्धक यह जानने का प्रयास करता है। कार्य ही प्रगति पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार है अथवा नहीं वह त्रुटियों व विचलनों को ज्ञात करके उनकी पुनरावृत्ति रोकने का प्रयास करता है। किन्तु ये सभी कार्य कुशल संचार प्रणाली के बिना सम्भव नहीं है।

1. उत्प्रेरण का शस्त्र (Weapon of Motivation) – कर्मचारियों के व्यक्तिगत लक्ष्यों आवश्कताओं एवं भावनाओं का ज्ञान कर उन्हें उत्प्रेरित करने के लिए सम्प्रेषण आवश्यक

होता है। पीटर एफ. ड्रकर के शब्दों में ''सूचनाएँ प्रबन्ध का अमूल्य शस्त्र हैं। प्रबन्धक व्यक्तियों को हाँकने का कार्य नहीं करता वरन् वह उनको अभिप्रेरित निर्देशित एवं संगठित करता है। ये सभी कार्य करने हेतु मौखिक अथवा लिखित शब्द अथवा अंको की भाषा ही उसका एक मात्र उपकरण होती है।''

2.निर्णयन का आधार –सही निर्णयों के लिए प्रबन्धक के पास पर्याप्त सूचनाओं तथ्यों एव आँकडों का ज्ञान होता आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त निर्णय के लिए विभिन्न व्यक्तियों से परामर्श करना सुझाव लेना एवं औपचारिक विचार विमर्श करना भी आवश्यक होता है। किन्तु ये सभी कार्य सम्प्रेषण प्रणाली के बिना संभव नहीं होते हैं।

3. पूर्वानुमान के लिए आवश्यक –प्रबन्ध के व्यवसाय के संचालन में कई प्रकार के माँग कीमत प्रतिस्पर्धा विक्रय बाजार दशाओं आदि से सम्बन्धित पूर्वानुमान करने होते है। इस हेतु अनेक सूचनाओं तथ्यों मत परामर्श जानकारी को एकत्रित करना पड़ता है। इस प्रकार सफल पूर्वानुमान के लिए सम्प्रेषण की निरन्तर आवश्यकता पडती है।

4. व्यवसाय का कुशल संचालन –आज व्यवसाय का स्वरूप अत्यन्त जटिल हो गया है व्यवसाय के संचालन के लिए अनेक तकनीकी आर्थिक प्रशासकीय वित्तीय निर्माण क्रियाओं का निष्पादन किया जाता है। व्यवसाय में विशिष्टिकरण श्रम विभाजन नवीन संगटन प्रारूप नवीन प्रौद्योगिकी के प्रयोग से व्यवसाय बहु आयानी एवं बहु, पक्षीय हो गया है। अनेक विभागों अनेक क्रियाओं अनेक हिलो व लक्ष्यों के कारण व्यवसाय को सूत्र में कंधकर प्रसाठी चलाना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार व्यवसाय का कुशल संचालन प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था पर निर्भर हो गया है। लिटिलफील्ड एवं रेवल लिखते हैं कि ''व्यवसाय करने की आधी लागत सूचनाओं का परिणाम होती है।''

5. एकीकृत एवं प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध की स्थापना –कॉम स्टॉक ग्लैसर लिखते हैं कि ''प्रबंध संचार प्रक्रिया की श्रृंखला मात्र है।'' हैण्डरसन एवं सुओजानित के अनुसार ''श्रेष्ठ सम्प्रेषण प्रबन्ध के एकीकृत दृष्टिकोण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।'' आधुनिक प्रबंध का स्वरूप प्रजातान्त्रिक हो गया है। प्रत्येक कर्मचारी को प्रबन्ध से जोडना उसका सहयोग लेना उसके विचारों व सुझावों को सुनना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार सम्प्रेषण से प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध की नींव सुदृढ़ होती है। लिटिलफील्ड के अनुसार ''अच्छे विचारों का सम्प्रेषण प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध की ओर एक मार्ग है।''

6. मनवीय सम्बंधों के निर्माण में सहायक–आधुनिक प्रबन्ध में मानवीय सम्बन्धों का विशेष महत्व है। आज कर्मचारी को उत्पाद के एक साधन के रूप में नहीं, वरन एक परिपूर्ण मानव के रूप में देखा जाता है। मनवीय सम्बन्धों की स्थापना के लिए कर्मचारी की समस्याओं, कठिनाईयों, भावनाओं, अपेक्षाओं आदि के बारे पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक हैं। नियोक्ता प्रवन्धकों तथा कर्मचारीयों के मध्य सतत् सम्प्रेशण से ही सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती हैं। रार्वट डी. असम्भव हैं। ये दानो जुड़वा बच्चों के समान हैं।

7. मनोबल का निर्माण (Helps Morale)–मनोवल कार्य के लिए स्वाच्छिक सहयोग की मानसिक दशा हैं। इस मनोदशा के निर्माण में सतत् सम्प्रेशण की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। प्रभावी सम्प्रेशण व्यवस्था के द्वारा कर्मचारियों की भावनाएं व विचारों का ज्ञान हो जाता है तथा उन्हें अपने मन की बात प्रबन्धों को कहने का अवसर मिलता हैं। प्रबन्धक भी

अपनी नीतियों को स्पष्ट करके कर्मचारियों में कार्य के प्रति आन्तरिक प्ररणा जाग्रत कर सकते हैं। इस प्रकार पारम्परिक विचार–विमर्श एवं सूचनाओ के आदान–प्रदान से कर्मचारियों में मनोवल का निर्माण होता हैं।

8. संदेहों व अज्ञानता का निवारण– (To Eradicate Doubts and Ignorance) –सदेह एवं ग्रम के कारण आपसी सम्बन्ध विगड जाते हैं। नियमों व कार्यपद्धतियों की अज्ञानता भी कर्मचारियों के कार्य में बाधक होती हैं। सम्प्रेशण की उचित व्यवस्था से ये सभी कार्य–वाधाएं दूर हो जाती हैं। यथासमय सूचनाओं व तथ्यों के प्रदान ये शकाओं व निवारण करके कार्य कुशलता में वृद्धि की जा सकती हैं।

9. पारस्परिक सहयोग में वृद्धि (Increases Mutual Cooperation) –प्रभावी सम्प्रेषण से कर्मचारियों मे सस्था के प्रति निष्ठा, उत्तरदायित्व की भावना तथा पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना में वृद्धि होती है। प्रबन्धक व कर्मचारी एक दूसरे की समस्याओं के समाधान में रूचि लेते है। वे एक दूसरे की अपेक्षाओं व भावनाओं को समझने लगते हैं तथा एक दूसरे को समर्पित भाव से सहयोग देने को तत्पर रहते हैं।

10. बाहरी पक्षों में सम्बन्ध – (Relations with outside World) –प्रत्येक उपक्रम वाह्य वातावरण से जुड़ा हुआ रहता है। उसे अनेक वाह्य पक्षों जैसे ग्राहक, श्रमसघं विनियोजक प्रतिसपर्धी सस्थाएँ तकनीकी व पेशेवर संस्थाएँ आपूर्तिकर्ता, स्थानीय समुदाय आदि के व्यवहार करने होते हैं। एक उपक्रम कैसे अपने सामाजिक दायित्वोंके निर्वाह के लिए भी इन सभी पक्षकारो से निरन्तर सम्पर्क बनायें रखना होता है। इस हेतु प्रभावकारी सम्प्रेषण व्यवस्था विकसित करनी होती है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक प्रबन्ध व्यवस्था में सम्प्रेषण प्राण ऊर्जा के समान है जिसके बिना कोई भी उपक्रम कार्य नहीं कर सकता है द्य थियोटर हर्बर्ट का कथन है कि ''सम्प्रेषण के बिना कोई भी संगठन अधिक समय तक कार्य नहीं कर सकता है।'' काट्रब तथा कान तो समस्त सामाजिक प्रणालियों को ही ''सीमित सम्प्रेषण तंत्रजाल'' मानते है।

सम्प्रेषण के सिद्धान्त

1. स्पष्टता– प्रेषित किये जाने वाले संदेशों में भाषा एवं अर्थ की स्पष्टता संस्था की प्रचलित नीतियों को बनायें रखने हेतु बहुत अधिक तकनीकी एवं निजी भाषा का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

2. संगतता –सूचनाएँ व संदेश परस्पर विरोधी नहीं होने चाहिए। संस्था की प्रचलित नीतियों व कार्यक्रमों के विरोध में भी नहीं होने चाहिए। आदेश व निर्देश संस्था पर प्रतिकूल प्रभाव रखने वाले नहीं होने चाहिए। जहां तक हो सके अपवादों की भी यथाशीघ्र नीतियां का एक अंग बना लेता चाहिए।

3. पर्याप्तता –प्रेषित सूचनाओं का प्रवाह उचित एवं पर्याप्त होना चाहिए ऊब पैदा करने वाला नहीं। अत्यधिक लम्बे विस्तृत एवं जटिल संदेश बोझिल सिद्ध होते हैं तथा कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। सूचनाओं का आधिक्य कर्मचारियों की मानसिक क्षमता चिन्तन कार्य प्रेरणा आदि पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अतः सूचनाओं की मात्रा भार एवं विषयवस्तु आदि का निर्धारण बहुत ही विवेकपूर्वक ढंग से किया जाना चाहिए।

4. समयानुकूलता –सम्प्रेषण समयानुकूल होना चाहिए तथा संदेशों के प्रेषण में अनावश्यक विलम्ब नहीं होना चाहिए। समयानुकूल संदेश परिणामदायक होते है। जबकि देरी से प्रेषित संदेश केवल ऐतिहासिक संलेख मात्र बने रहते है। सम्प्रेषण से लगने वाले समय का निर्धारण करते समय संचार दशाओं तकनीकी व मनोवैज्ञानिक पहलुओं निकटतम अधिकारी के स्थान प्रेषक एवं प्रेषित की योग्यता आदि बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

5. उपयुक्त –प्रसारण प्रभावी सम्प्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि प्रेत्यक सूचना सही व्यक्ति के पास सही समय पर पहुँच जाए क्या सूचित करना है के साथ साथ प्रेषण का समय मार्ग प्रेषिति आदि का भी सही निर्धारण कर लिया जाना चाहिए प्रबन्धक को पात्र समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप ही सूचना प्रसारण का सर्वश्रेष्ठ मार्ग चुनना चाहिए।

6. सामान्य स्त्रोत –जहाँ तक सम्भव हो सूचनाएँ एक सामान्य स्त्रोत से ही प्रेषित की जानी चाहिए जब सूचनाएं सामान्य स्त्रोत से प्रेषित नहीं की जाती हैं तो कर्मचारी अन्य स्त्रोतो से सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जिससे सूचनाओं के विकृत अशुद्ध एवं भ्रामक होने की सम्भावनायें बढ़ जाती है।

7. अवसर अनुकूलता तथा एकरूपता में संतुलन –यद्यपि संदेशों की एकरूपता से उपक्रमता का कार्य संचालन सुगम हो जाता है। किन्तु फिर भी आज के गतिशील व्यवसाय में परिवर्तनों को उपयुक्त महत्व देना ही होता है। अतः सम्प्रेषण प्रविधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें एकरूपता के साथ साथ परिवर्तनों को भी स्वीकार किया गया हो। दूसरे शब्दों में परिवर्तन योग्यता अर्थात् अवसर अनुकूलता तथा एकरूपता में एक उचित संतुलन बनाये रखा जाना चाहिए।

8. अभिरूचि एवं स्वीकृति – सम्प्रेषण का मुख्य उद्देश्य संदेश प्राप्तकर्ता में संदेश के प्रति अभिरूचि एवं प्रतिक्रिया जाग्रत करना तथा उसे सूचना को स्वीकार करने एवं उसके अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित करना है। संदेश की भाषा एवं प्रारूप ऐसा होना चाहिए कि अधीनस्थ कर्मचारी उसका उल्लघंन करने के लिए विवश न हों।

9. न्यूनतम मध्यस्थ –सम्प्रेषण प्रक्रिया में प्रेषक एवं प्रेषित के बीच मध्यस्थों की संख्या न्यूनतम होनी चाहिए। मध्यस्थों की संख्या कम होने पर न केवल संदेश शीघ्र पहुँच जाता है। बल्कि के विकृत होने की सम्भावना भी कम रहती है।

10. प्रेषिति की स्थिति का ज्ञान –यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि संदेश भेजतेसमय प्रेषक को प्रेषिति की योग्यता शिक्षा ज्ञान संगठनात्मक स्थिति आदि को ध्यान में रखना चाहिए ताकि पारस्परिक समझ उत्पन्न हो सके तथा अनावश्यक अर्थ की जटिलता समाप्त हो सके। प्रेषक को प्रेषिति की आवश्यकताओं भावनाओं व सामाजिक रीति रिवाजों भी ध्यान देना चाहिए।

लोचता – प्रभावी सम्प्रेषण लोचपूर्ण होता है। इस प्रणाली में परिवर्तित दशाओं तकनीकी परिवर्तनों व अन्य संगठनात्मक समायोजनों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

(iv) संदर्भ ढाँचा– एक ही संदेश का अलग अलग व्यक्ति अपने पूर्व अनुभव के आधार पर भिन्न भिन्न निर्वचन कर लेते है। फलतः संदेश के लिपिबद्धकरण तथा अनुवाद में अन्तर उत्पन्न हो जाता है।

(v) चयनात्मक अवबोध –चयनात्मक अवबोध के कारण एक व्यक्ति केवल उन्हीं सूचनाओं का अनुमोदन करता है जो उसके विश्वास से मेल खाती है। अर्थात वह उन सूचनाओं को निरस्त या अवरूद्ध कर देता है। जो उसके विचारों के अनुरूप नहीं होती है।

(vi) मूल्य निर्णय –कई बार कुछ प्रबंधक किन्ही संदेशों अथवा उनके प्रेषको के बारे में अपने मूल्य निर्णय मत या छवि अपने मस्तिष्क में निर्माण कर लेते है। व पूर्ण संदेश प्राप्त करने से पूर्व ही उसकी उपयोगिता का मूल्यांकन कर लेते हैं यह पूर्व मत सम्प्रेषण में बाधक होता है।

7. सम्प्रेषण अतिभार– कई बार एक प्रबन्धक के पास अपनी कार्य एवं प्रत्युत्तर क्षमता से अधिक सूचनायें निष्पादन के लिए आ जाती है। मिलर के अनुसार प्रबन्धक ऐसी स्थिति में निम्न प्रतिक्रियायें करता है, जो सम्प्रेषण बाधक होती हैं–

(1) छोडना – कुछ सूचनाओं का प्रत्युत्तर न दे पाना।

(2) भूल – सूचनाओं का गलत प्रत्युत्तर देना।

(3) प्रतीक्षा करवाना – जब तक कोई प्रेरणा प्राप्त न हो विलम्ब करके सूचनाओं के अधिक भारको बराबर करना।

(4) फिल्टरिंग – कम महत्वपूर्ण सूचनाओं को पृथक करना।

(5) मोटा अनुमान आवरण प्रत्युत्तर से कार्य चलाना अनुमान के आधार पर प्रत्युत्तर देना।

(6) बहु श्रृंखला का प्रयोग अतिरिक्त सम्प्रेषण श्रृंखला का प्रयोग करके सूचनाओं का प्रवाह बदलना।

(7) पलायन – सूचनाओं की उपेक्षा करना।

8. भौगोलिक बाधायें –प्रेषक एवं प्रषिति के मध्य भौगोलिक दूरी भी शीघ्र सम्प्रेषण में बाधा पहुँचाती है। इसमें लागत बढ़ जाने के कारण अपर्याप्त सूचनाओं का ही सम्प्रेषण किया जाता है।

9. मानवीय सम्बन्ध –विषयक बाधायें कर्मचारियों के मध्य मधुर मानवीय सम्बन्धों के अभाव सम्प्रेषण की प्रक्रियां विफल हो जाती है। असहयोग संघर्ष मतभेद विरोध व वैमनस्य की भावना बन जाने पर संदेशों के प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है।

10. विकृत उद्देश्य –अस्पष्ट दोषपूर्ण एवं विकृत उद्देश्य के आधार पर सम्प्रेषण की सफलता की आशा करना व्यर्थ होता है। उद्देश्यों के असंगतपूर्ण एवं स्वार्थ केंन्द्रित होने की दशा में भी सम्प्रेषण से कोई श्रेष्ठ परिणाम नहीं किये जा सकते हैं।

11. अर्द्ध श्रवण –प्रेषक या प्रेषिति के द्वारा संदेश को ठीक प्रकार से न सुन पाना भी सम्प्रेषण में बाधा खडी करता है। जोसेफ दूहर के शब्दों में ष्श्रवण सम्प्रेषण का सबसे अधिक उपेक्षित भाग है। आधी बात सुनना अपने इंजिन को निष्क्रय गति वाली स्थिति में दौडाने के समान है। इसमें आप गैसोलीन का उपयोग तो करते हैं किन्तु आगे विल्कुल नहीं बढ पाते।

12. पूर्व मूल्यांकन –कई बार संदेश प्राप्तकर्ता प्रेषक द्वारा अपना संदेश पूरा करने के पूर्व ही उसका पूर्व मूल्यांकन करके सन्देश को बीच में ही रोक देता है। ऐसा पूर्व मूल्याकंन भी सूचना के हस्तान्तरण में बाधा उपस्थित करता है।

13. स्त्रोत की विश्वसनीयता –स्त्रोत की विश्वसनीयता से तात्पर्य संदेश प्राप्तकर्ता द्वारा सम्प्रेषक के शब्दों विचारों एवं व्यवहार में व्यक्त किये भरोसे विश्वास एवं निष्ठा से है। जहां श्रमसंघ के नेता प्रबन्ध को शोषणकर्ता के रूप में तथा प्रबन्धक श्रम नेताओं को राजनैतिक पशु के रूप मे देखते हों वहां वास्तविक सम्प्रेषण की संभावना कम हो जाती है।

14. समयाभाव –कई बार समयाभाव के कारण संदेश यथासमय नहीं भेजे जाते है तथा लोगों से सम्पर्क करना भी सम्भव नहीं होता है। इससे सम्प्रेषण की गतिशीलता कम हो जाती है।

15. अनौपचारिक सम्प्रेषण –कई बार समूहों में अनौपचारिक सम्प्रेषण गलत अफवाहों कही सुनी गई बातों अर्द्ध सत्य कथनों आदि के कारण सही सूचनाओं को भी अपवाहें मान लिया जाता है। तथा व्यक्ति गतल अफवाहों पर अधिक ध्यान देने लगते हैं। इससे सम्प्रेषण प्रणली में अव्यवस्था फैल जाती है।

16. परिवर्तन का विरोध – यद्यपि मानव परिवर्तन चाहता है। किन्तु संगठन में कर्मचारी विद्यमान परस्थितियों में ही कार्य करना पसन्द करता है। यह अपनी कार्य शैलियों कार्यपद्धतियों व कार्य तरीकों में बदलाव नहीं चाहता है। अतः वह परिवर्तन सम्बन्ध सूचनाओं की उपेक्षा करता है।

17. अन्य सामान्य रूकावटें –सम्प्रेषण प्रक्रिया को विरुद्ध करने वाली अन्य सामान्य रूकावटें निम्नलिखित हैं–

(1) घटनाओं अथवा विषय वस्तु के वास्तविक अवलोकन या वर्णन तथा निष्कर्षो में कोई अन्तर न करना।

(2) विचारों को एक ही सांचे में ढालने तथा अवरूद्ध मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति।

(3) कर्मचारियों अथवा अधिकारियों में कतराने तथा ध्रुवीयकरण करने की प्रवृत्ति।

(4) ऊर्ध्वागामी संदेशों को फिल्टर करने की प्रवृत्ति।

(5) समय दबाव के कारण संदेशों के लिए लघुपथन की प्रवृत्ति।

(6) सांस्कृतिक विभिन्नताएं प्रतिक्रिया के ज्ञान का अभाव दुर्बल स्मृति सम्प्रेषण की अत्यधिकऔपचारिकता वित्त की कमी आदि।